संघ-वृक्ष के बीज

डा० केशवराव हेडगेवार

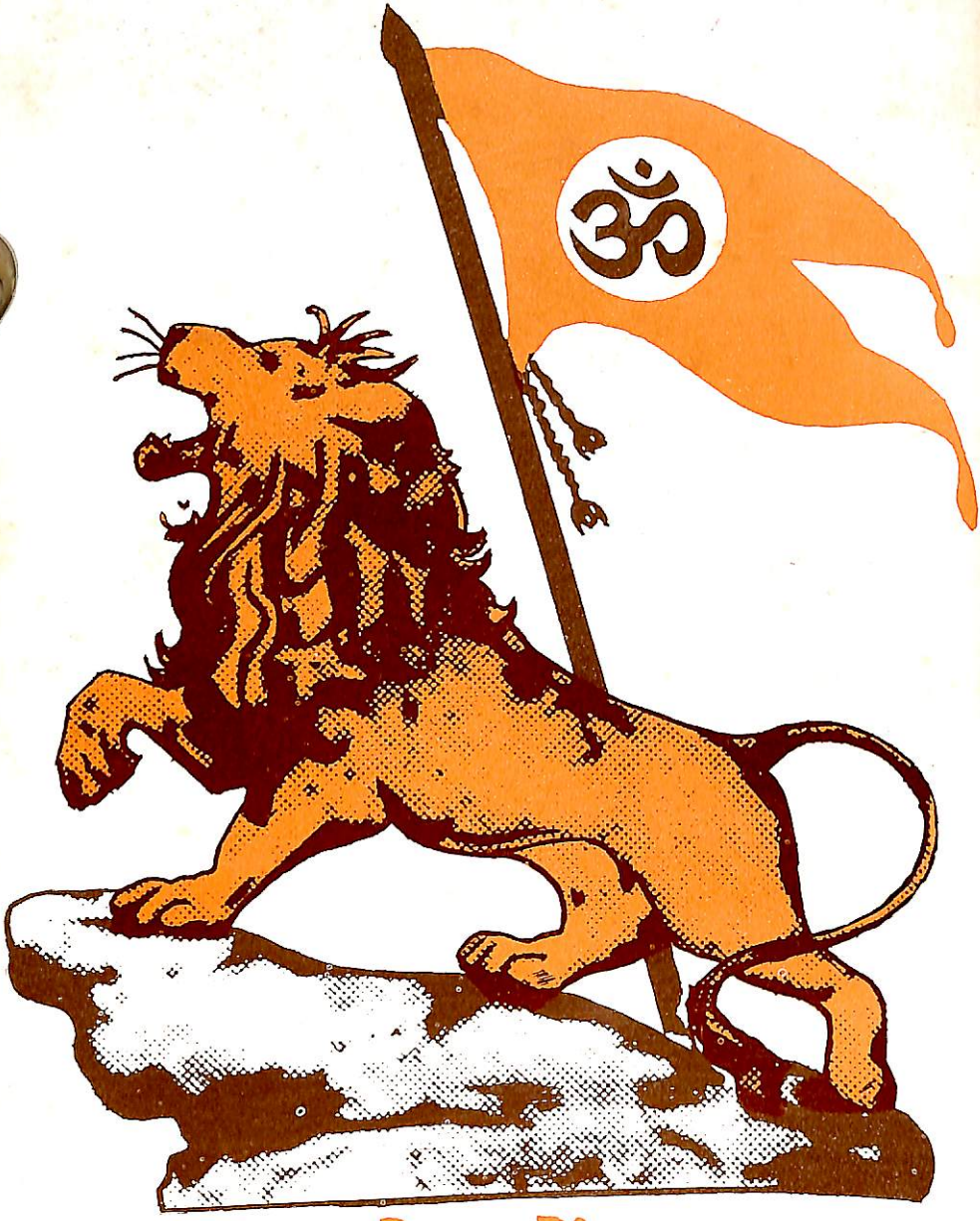

"स्वयमेव मृगेंद्रता"

प्रकाशक

डा० हेडगेवार जन्म शताब्दी समारोह समिति
पूर्वी उत्तर प्रदेश, माधव भवन, लखनऊ

संघ-वृक्ष के बीज

डाक्टर केशवराव हेडगेवार

चन्द्रशेखर परमानन्द भिशीकर

डॉ : हेडगेवार जन्मशताब्दी समारोह समिति
पूर्व उत्तर प्रदेश
माधव भवन, माडल हाउसेज़
लखनऊ-२२६००१

प्रकाशक :
डॉ : हेडगेवार जन्म शताब्दी, समारोह समिति
पूर्व उत्तर प्रदेश
माधव भवन,
माडल हाउसेज़
लखनऊ

प्रथम संस्करण : युगाब्द ५०९० (१९८८ ई०)

मूल्य : चार रुपये

प्रस्तावना

राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ गत ६३ वर्षों में न केवल देशव्यापी हुआ है अपितु भारत के राष्ट्रजीवन में उसने अपना एक महत्त्वपूर्ण स्थान भी बना लिया है । देश के सामने विद्यमान समस्याओं का राष्ट्रीयता की भावात्मक अवधारणा के निकष पर निदान करने की संघ की परम्परा होने के कारण उसके मत को प्रबुद्ध लोकमानस में विशेष महत्त्व भी प्राप्त हुआ है । किंतु इतना सब होते हुए भी संघ के संस्थापक डाक्टर केशव बलिराम हेडगेवार का नाम एवं उनका जीवन संघ-बाह्य क्षेत्र में अल्पज्ञात ही है । यह डाक्टर हेडगेवार जी के आत्मविलोपी स्वभाव का ही स्वाभाविक परिणाम है ।

सन् १९८८-८९ डाक्टर हेडगेवार जी का जन्मशताब्दि-वर्ष है और इस अवसर पर डाक्टर हेडगेवार जन्मशताब्दि-समारोह समिति ने उनके जीवन, विचार एवं कृतित्व के संबंध में सर्वसाधारण समाज को अवगत कराने हेतु एक व्यापक जनसंपर्क अभियान का आयोजन किया है, जिसके अंतर्गत संघ के स्वयंसेवक एवं समाज के संघप्रेमी सज्जन ग्राम-ग्राम में जाने की योजना बना रहे हैं । तदर्थ एक ऐसी संक्षिप्त पुस्तिका की आवश्यकता अनुभव हुई जो देशबांधवों की क्रयशक्ति के अंतर्गत रहते हुए भी डाक्टर साहब एवं उनके जीवनकार्य के संबंध में उन्हें उनकी अपनी भाषा में साररूप जानकारी प्रदान कर सके तथा यह बता सके कि डाक्टर जी के व्यक्तित्व में बीजरूप में विद्यमान गुणों एवं उनके द्वारा की गयी कृतियों की अभिव्यक्ति संघरूपी विशाल वटवृक्ष के अंग-प्रत्यंग में किस प्रकार हुई है । इस लघु पुस्तिका के द्वारा राष्ट्र के सर्वांगीण विकास के लिए बद्धपरिकर राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ की ओर देखने की सम्यक् दृष्टि का विकास हो सका तो इसका उद्देश्य सार्थक माना जा सकेगा ।

विजयादशमी
कलियुगाब्द ५०९०

कु० सी० सुदर्शन

निवेदन

भारत हिन्दु राष्ट्र है, यह स्थापना नयी नहीं। फिर भी विशाल हिन्दु समाज के सदस्य दीर्घ काल तक, भीड़ के बीच अकेलेपन की मानसिकता लेकर, आक्रामक विदेशियों के दिये त्रास सहते रहे। पराधीनता और आन्तरिक विभेदों से ग्रस्त हिन्दुओं को संगठित कर राष्ट्रीय स्वाभिमान से उनका साक्षात्कार कराने और संगठन के माध्यम से राष्ट्र के परम वैभव की ध्येय-साधना का मार्ग दिखाने वाले डाक्टर हेडगेवार जी की जन्म-शताब्दी के पुनीत अवसर पर प्रकाशित यह पुस्तक सुरुचि प्रकाशन का श्रद्धा-पुष्प है।

इसका मूल पाठ प्रसिद्ध मराठी पत्रकार श्री चं०प० भिशीकर ने तैयार किया जो दैनिक तरुण भारत के प्रधान सम्पादक रहे हैं। बाल्यावस्था से ही स्वयंसेवक और फिर प्रचारक के रूप में संघ से उनका घनिष्ठ सम्बन्ध तो रहा ही, उनकी लिखी पुस्तक 'केशवः संघ-निर्माता' भी प्रसिद्धि प्राप्त कर चुकी है।

मूल मराठी से हिन्दी-भाषियों के लिए इसे सुलभ करने का श्रेय रा० स्व० संघ के अखिल भारतीय बौद्धिक प्रमुख श्री कुप्० सी० सुदर्शन जी को है जिन्होंने अनुग्रहपूर्वक इसकी प्रस्तावना लिखना भी स्वीकार कर लिया।

जागरूक पाठकों के माध्यम से डाक्टर हेडगेवार जैसे राष्ट्रनायक के व्यक्तित्व, विचार और कर्तृत्व का कुछ परिचय हम समाज को दे सके तो अपना प्रयास सार्थक मानेंगे।

—प्रकाशक

संघ-वृक्ष के बीज
डाक्टर केशवराव हेडगेवार

राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ का नाम आज केवल भारत में ही नहीं, दुनिया भर में फैल चुका है । सभी मानते हैं कि 'आर. एस. एस.' हिन्दुओं का एकमेव प्रभावी संगठन है । संघ के विरोधी भी इस बात से इन्कार नहीं कर पाते कि भारत के राष्ट्रजीवन में संघ का अपना एक विशेष स्थान है । तब स्वाभाविक रूप से यह प्रश्न उठता है कि इस संगठन का प्रारंभ कब, किसने, कहाँ और क्यों किया ? संघ के जन्मदाता का जीवन कैसा था ? ऐतिहासिक भूमिका निभाने वाले इस संगठन का निर्माण करने की प्रेरणा उन्हें कहाँ से मिली ? संघ आरंभ में जैसा था अब भी वैसा ही हैं या उसमें कोई परिवर्तन हुआ है ? आदि । इस समय संघ के संस्थापक डॉ० केशव बलिराम हेडगेवार का जन्मशताब्दि-वर्ष चल रहा है । संघ का जन्म हुए ६३ वर्ष बीत चुके हैं और संघ के संस्थापक के जन्म को सौ वर्ष पूरे हो रहे हैं । अतः यह उचित ही होगा कि इस अवसर पर संघनिर्माता के जीवन और कार्य के संबंध में कुछ विचार कर लिया जाये ।

जन्मजात देशभक्त

डॉ० हेडगेवार का जन्म युगाब्द ४९९१ की चैत्र शुद्ध प्रतिपदा, अर्थात् १ अप्रेल १८८९ ई० के दिन नागपुर के एक गरीब वेदपाठी परिवार में हुआ था । जन्म के समय किसी भी प्रकार की अनुकूलता उन्हें प्राप्त नहीं थी । पुरोहिती कर आजीविका चलाने वाला उनका परिवार नागपुर की एक पुरानी बस्ती में निवास कर रहा था । घर का वातावरण आधुनिक शिक्षा और देश के सार्वजनिक जीवन से सर्वथा अछूता था ।

किन्तु जन्म से ही भगवान ने डॉक्टर साहब को एक अनोखी देन दी थी जिसके बल पर वे अपने जीवन को कर्तृत्ववान्, परिस्थिति को बदलने की क्षमता रखने वाला और आदर्श बना सके । यह ईश्वरीय देन थी– जन्मजात देशभक्ति और समाज के प्रति गहरी संवेदनशीलता । उमर के आठवें वर्ष में ही उसका परिचय केशव के संगी-साथियों, पड़ोसियों और घर के लोगों को मिलने लगा था । इस उमर में ही उनके मन में ऐसा भव्य विचार आया कि इंग्लैंड की रानी विक्टोरिया का राज्य पराया है और उसके साठ साल पूरे होने की खुशी में जो मिठाई बाँटी गयी उसे खाना हमारे लिए लज्जा की बात है । और मिठाई का वह दोना उन्होंने एक कोने में फैंक दिया । चार साल बाद सातवें एडवर्ड का राज्याभिषेक-समारोह जब बड़े ठाठ-बाट से मनाया गया तब उसमें भी केशव ने भाग नहीं लिया । बाल केशव ने कहा– "पराये राजा का

राज्याभिषेक-समारोह मनाना हम लोगों के लिए घोर लज्जा की बात है ।'' विद्यालय में पढ़ते समय नागपुर के सीतावर्डी किले पर अंग्रेजों के झंडे 'यूनियन जैक' को देखकर उन्हें बड़ी बेचैनी होती थी और मन में लालसा जागती थी कि उसके स्थान पर भगवा झंडा फ़हराया जाय । एक दिन एक अनोखी कल्पना उनके मन में उभरी कि किले तक सुरंग खोदी जाय और उसमें से चुपचाप जाकर उस पराये झंडे को उतारकर उसकी जगह अपना झंडा लगा दिया जाय । तदनुसार उन्होंने अपने मित्रों सहित सुरंग खोदने का काम शुरू भी किया था ।

देशभक्ति—जीवन का स्वर

यह जो क्रियाशील देशभक्ति का भाव डाक्टर हेडगेवार के बचपन में प्रकट हुआ, वही उनके पूरे जीवन में अखंड रूप से बना रहा और उनके सारे जीवन को प्रकाशित करता रहा । वे जब नागपुर के नीलसिटी हाईस्कूल में पढ़ रहे थे, तभी अंग्रेज सरकार ने कुख्यात रिस्ले सर्क्युलर जारी किया । इस परिपत्र का उद्देश्य विद्यार्थियों को स्वतंत्रता के आन्दोलन से दूर रखना था । नेतृत्व का गुण केशवराव हेडगेवार में विद्यार्थी अवस्था से ही था । शाला के निरीक्षण के समय उन्होंने प्रत्येक कक्षा में निरीक्षक का स्वागत 'वंदे मातरम्' की घोषणा से कराने का निश्चय किया और उसे सफलता के साथ पूरा कर दिखाया । विद्यालय में खलबली मच गयी ; मामला तूल पकड़ गया और अंत में उस सरकार-मान्य विद्यालय से उन्हें निकाल बाहर कर दिया गया । फिर यवतमाल की राष्ट्रीय शाला में उन्होंने मैट्रिक की पढ़ाई की, किन्तु परीक्षा देने के पूर्व ही वह शाला भी सरकारी कोप का शिकार हो गयी । इसलिए उन्हें परीक्षा देने अमरावती जाना पड़ा ।

जब कोई राष्ट्र गुलाम होता है तब देशभक्ति से जलते अन्तःकरण बड़े ही संवेदनशील हो जाया करते हैं । 'काल' और 'केसरी' सरीखे समाचार-पत्रों के आग उगलते लेख, लोकमान्य तिलक के गरजते भाषण, अंग्रेजी साम्राज्यवाद का दमनचक्र, बंग-भंग के विरोध में उभरा उग्र आन्दोलन, क्रान्तिकारियों के साहसभरे कार्य और उनका बलिदान आदि बातें यदि केशवराव पर कोई असर न करतीं, तो ही आश्चर्य की बात होती । केशवराव निर्भीक और साहसी थे तथा देश के लिए किसी भी प्रकार का त्याग करने के लिए तैयार थे । अपने लिए पैसा, मान-सम्मान, प्रसिद्धि, आराम आदि किसी बात की अभिलाषा उनके मन में कभी पैदा नहीं हुई । उन्होंने सन् १९१० में कलकत्ते के नेशनल मेडिकल कॉलेज में डाक्टरी की शिक्षा के लिए प्रवेश लिया ताकि उनका बंगाल के क्रान्तिकारियों से सम्पर्क आ सके और बाद में वे वैसा ही कार्य विदर्भ में कर सकें । वहाँ पुलिनबिहारी दास के नेतृत्व में 'अनुशीलन समिति' नामक क्रान्तिकारियों की एक टोली काम कर रही थी । इस समिति के साथ केशवराव का गहरा संबंध स्थापित हुआ और वे उसके अंतरंग में प्रवेश पा गये ।

क्रान्तिकारी तेवर

कलकत्ते के मेडिकल कॉलेज में पाँच वर्ष का पाठ्यक्रम पूरा कर वे 'डाक्टर' बन गये । इस पाँच वर्ष के कालखंड में किये गये अपने कार्यकलापों के संबंध में वे कभी कुछ

नहीं बोले । पर यह तो सुविदित है कि भिन्न-भिन्न क्षेत्रों में अगुवाई करने वाले नेताओं का उन्होंने स्नेह प्राप्त किया । स्थान-स्थान के क्रान्तिकारियों से उनकी घनिष्ठता बढ़ी और उन सभी को शस्त्रास्त्र इधर से उधर गुपचुप पहुँचाने के काम में उनकी सावधानी, संयम, योजकता आदि गुणों का परिचय प्राप्त हुआ । इस काम में प्रान्त और भाषा की अड़चन उनके आड़े नहीं आयी । बंगाली भाषा उन्होंने भलीभाँति सीख ली थी और अनेक लोगों से मैत्री-संबंध जोड़ लिये थे । बाढ़, महामारी आदि संकटों के समय उन्होंने अपने तरुण मित्रों को साथ लेकर परिश्रमपूर्वक निःस्वार्थ सेवा की । केशवराव जब डाक्टरी की उपाधि प्राप्त कर नागपुर वापस आये, उस समय प्रथम महायुद्ध के बादल मँडरा रहे थे । उन्हें लगा कि यह उपयुक्त समय है जब क्रान्तिकारी आन्दोलन का संगठन कर अंग्रेज सरकार को चुनौती दी जा सकती है । उसके लिए अनेक खतरे उठाते हुए वे आन्दोलन में भाग लेते रहे ।

किन्तु यह बात उनके ध्यान में आये बिना नहीं रही कि सशस्त्र क्रान्ति के मार्ग की अपनी सीमाएँ हैं और इस मार्ग से भारत जैसे विशाल देश से परायों को उखाड़ फैंकना संभव नहीं है । अतः जितनी सावधानी से उन्होंने इस कार्य को फैलाया था, उतनी ही सावधानी से धीरे-धीरे समेट लिया । इस काम में अनेक वर्ष लगे । यदि एक मार्ग से सफलता नहीं मिली तो उससे वे निराश या हताश नहीं हुए । देशभक्ति और निःस्वार्थ भाव से काम में लगे रहना उनका स्वभाव था ।

आन्दोलन का मार्ग

एक ओर जहाँ वे क्रान्ति के लिए जमा किये गये शस्त्रास्त्रों को ठीक ठिकाने लगाने और उस काम में जुटे व्यक्तियों की सुरक्षा-व्यवस्था करने में लगे थे, वहीं दूसरी ओर लोकमान्य तिलक के अनुयायी बनकर कांग्रेस के आन्दोलन में कूद पड़े । लोकमान्य तिलक के प्रति डाक्टर साहब की इतनी भक्ति थी कि एक बार जब कलकत्ते की एक जन-सभा में एक वक्ता ने तिलक जी को अपशब्द कहे तो डाक्टर साहब ने मंच पर जाकर उसे ऐसी जोरदार थप्पड़ मारी कि उसका थोबड़ा लाल हो गया । वे पूर्ण स्वतंत्रता के हामी थे और अपनी यह बात बड़े आग्रह के साथ रखा करते थे । जहाँ भी अवसर मिलता, वे अत्यन्त उग्र व उत्तेजक भाषण दिया करते थे । डाक्टर साहब ने कांग्रेस के अन्दर ही उग्र विचारों का एक गट खड़ा किया था ।

इन्हीं दिनों महात्मा गांधी का भारत के राजनीतिक क्षितिज पर उदय हो रहा था । देश में असन्तोष घुमड़ने लगा था । अंग्रेज सरकार द्वारा रौलेट की रिपोर्ट के आधार पर देश में एक दमनकारी कानून जारी किया जाना इसका प्रमुख कारण था । इस कानून के द्वारा सरकार को बड़े व्यापक अधिकार मिल गये थे । वह किसी को भी, केवल संदेह के आधार पर, देशद्रोह का आरोप लगाकर बंदी बना सकती थी, बिना जाँच किये कैद में डाले रख सकती थी; अथवा किसी भी हलचल पर प्रतिबंध लगा सकती थी । इस कानून का विरोध करने के लिए अमृतसर के जलियाँवाला बाग में जो सभा हुई उस पर अत्यंत क्रूरतापूर्वक गोलियाँ चलायी गयीं जिसने सैकड़ों लोगों की बलि ले ली ।

दूसरी बात यह हुई कि अंग्रेज साम्राज्यवादियों ने तुर्की के खलीफा को गद्दी से उतार

दिया था जिसके कारण मुसलमान ब्रिटिश शासन के खिलाफ भड़क उठे थे । महात्मा गांधी ने इन दोनों कारणों से उत्पन्न जन-असंतोष का स्वराज्य के आन्दोलन को तेज करने के लिए भरपूर लाभ उठाना चाहा । 'खिलाफत' आन्दोलन को समर्थन देकर अंग्रेजों के विरुद्ध हिन्दुओं और मुसलमानों का संयुक्त मोर्चा खड़ा करने का उन्होंने निश्चय किया और सत्याग्रह आन्दोलन की घोषणा की । सन् १९१९ का कांग्रेस अधिवेशन अत्यन्त तनावपूर्ण वातावरण में अमृतसर में सम्पन्न हुआ और अगले वर्ष का अधिवेशन नागपुर में करने का निश्चय किया गया । अमृतसर के अधिवेशन में डाक्टर हेडगेवार उपस्थित थे ।

१९१५ से १९२० ई० तक नागपुर में रहते हुए डाक्टर साहब राष्ट्रीय आन्दोलनों में अत्यन्त सक्रिय रहे । प्रवास, सभा, बैठक आदि कार्यक्रमों में वे सदा व्यस्त रहा करते थे। किन्तु तरुणों में पूर्ण स्वतंत्रता की आकांक्षा धधकाने पर वे विशेष ध्यान देते थे । हाथ में लिये काम में अपने आपको झौंक देने, सहयोगियों को जोड़ने और निःस्वार्थ भाव से काम करने के उनके गुणों के कारण नेता लोगों को उनका सहयोग अत्यन्त मूल्यवान प्रतीत होने लगा । स्वयं को जो लगता था उसे बिना लाग-लपेट के बड़े नेताओं के सामने रखने का साहस भी डाक्टर जी में था । सन् १९२० के नागपुर कांग्रेस अधिवेशन में उनके इन गुणों का अनुभव सबको हुआ और मतभेदों के होते हुए भी संस्था के अनुशासन का पालन करने का उनका एक और अनुकरणीय गुण भी सबको देखने को मिला ।

स्वतंत्रता का लक्ष्य

विदर्भ के सभी छोटे-बड़े कार्यकर्ताओं की यह तीव्र इच्छा थी कि नागपुर का अधिवेशन लोकमान्य तिलक की अध्यक्षता में हो । किन्तु उनकी यह इच्छा पूरी नहीं हो सकी, क्योंकि उसके पहले ही १ अगस्त १९२० को मृत्यु ने उन्हें छीन लिया । इस दुःखद समाचार के नागपुर पहुँचने पर यह प्रश्न उठा कि अब अध्यक्ष कौन बने ? नागपुर के गरमदलीय नेताओं ने पांडिचेरी में साधना कर रहे पुराने क्रान्तिकारी श्री अरविन्द घोष को निमंत्रित करने का निश्चय किया । डॉ० मुंजे और डाक्टर हेडगेवार अरविन्द बाबू से मिलने पांडिचेरी गये और उनसे अध्यक्षता स्वीकार करने का बहुत आग्रह किया । किन्तु आध्यात्मिक साधना का मार्ग अपना लेने वाले अरविन्द बाबू पुनः राजनीति में आने के लिए तैयार नहीं हुए । तब कांग्रेस के नरमपंथियों में से ही श्री विजयराघवाचारी को अध्यक्ष पद के लिए चुना गया । डाक्टर साहब को यह नाम पसंद नहीं था, किंतु एक बार चयन हो जाने के बाद उन्होंने अधिवेशन की सफलता के लिए कोई कसर नहीं छोड़ी । अधिवेशन में आये साढ़े चौदह हजार प्रतिनिधियों की सुख-सुविधा और अन्य व्यवस्थाएँ संभालने के लिए डॉ० ल. वा. परांजपे और डॉ० हेडगेवार के नेतृत्व में एक स्वयंसेवक दल का गठन किया गया था । यह सारी जिम्मेदारी उन्होंने इतने अच्छे ढंग से निभायी कि वे सभी की प्रशंसा के पात्र बन गये ।

इस अधिवेशन में खिलाफत आन्दोलन की सहायता करने का प्रस्ताव पारित हुआ । सच पूछा जाय तो मुसलमानों के सहयोग को आवश्यकता से अधिक महत्त्व देने की गांधी जी की नीति डाक्टर साहब को मान्य नहीं थी । अपनी बात उन्होंने गांधी जी तक पहुँचायी भी ।

डाक्टर साहब 'सम्पूर्ण स्वतंत्रता' शब्दों के प्रयोग का अत्यधिक आग्रह करते थे। उन्होंने प्रयत्नपूर्वक यह प्रस्ताव भी स्वागत-समिति से पारित करवाकर विषय-समिति के पास भिजवाया था कि "हिन्दुस्थान में लोकतंत्र की स्थापना कर पूँजीवादी राष्ट्रों के चंगुल से देश को मुक्त कराना ही कांग्रेस का ध्येय है।" किंतु तत्कालीन कांग्रेस के नेताओं को विचारों की इतनी ऊँची छलांग रास नहीं आयी। अतः ये दोनों ही सुझाव रद्दी की टोकरी में डाल दिये गये।

बचाव का भाषण अधिक राजद्रोहात्मक

डाक्टर साहब का यह मत था कि यदि किसी संस्था में काम करने का निश्चय किया है तो मतभेदों के होते हुए भी उस संस्था के निर्णयों को सिर-आँखों पर स्वीकार करना चाहिए। उन्होंने इसका पालन किया। गांधी जी के नेतृत्व में कांग्रेस ने 'खिलाफत' के समर्थन में असहयोग आन्दोलन की घोषणा की। डाक्टर साहब यह नहीं मानते थे कि इस आन्दोलन से स्वराज्य निकट आयेगा या देश को और कोई विशेष लाभ होगा। फिर भी यह सोचकर कि इससे देश में जागृति-निर्माण करने का कम से कम एक अवसर तो मिलेगा, वे आन्दोलन में कूद पड़े और तूफानी दौरा कर अपने उग्र भाषणों से उन्होंने विदर्भ के ग्रामीण भाग में हलचल मचा दी।

इन भाषणों के कारण उन पर राजद्रोह का मुकदमा दायर किया गया। गांधी जी का मत था कि आन्दोलन में जिन पर मुकदमे चलाये जायें वे अपना बचाव न कर सजा स्वीकार कर लें। किंतु डाक्टर साहब ने अदालत के मंच को भी राष्ट्रीय विचारों के प्रचार का माध्यम बनाने हेतु मुकदमा लड़ा और सरकारी रिपोर्टरों के होश ठिकाने लगा दिये। अदालत में दी गयी उनकी सफाई उग्र देशभक्ति से इतनी सराबोर और इतनी तीखी भाषा में थी कि न्यायाधीश को भी कहना पड़ा कि उनका "बचाव का भाषण मूल भाषण से भी अधिक राजद्रोहात्मक है।" डाक्टर साहब को एक वर्ष के सश्रम कारावास की सजा हुई जिसे उन्होंने प्रसन्नता से काटा।

विचार-मंथन

एक वर्ष बाद जब वे कारागार से छूटे, तब स्थान-स्थान पर जनता ने उनका भारी स्वागत किया। किन्तु ऐसे स्वागतों में रम जाने वाले या आन्दोलन ठंडा हो जाने पर निराश हो जाने वाले लोगों में वे नहीं थे। स्वतंत्रता आन्दोलन में उन्हें अब तक जो अनुभव मिले थे उनसे उनके मन में अनेक प्रकार के प्रश्न चक्कर काटने लगे थे। उन्हें लगने लगा था कि कोई अन्य मार्ग खोजा जाना चाहिए। खिलाफत आन्दोलन की जड़ में मट्ठा तो तुर्कस्थान में कमालपाशा के तरुण तुर्कों ने डाल दिया था, किन्तु भारत के मुसलमानों ने उस आन्दोलन की असफलता के लिए हिन्दुओं को ही दोषी ठहराया। उन्होंने स्थान-स्थान पर हिन्दुओं पर आक्रमण करना प्रारंभ कर दिया। इससे डाक्टर साहब के मन में विचारों की आँधी और तेज हो गयी। विशेषतः मलाबार में मोपलों के उपद्रव और उनके द्वारा हिन्दुओं पर किये गये अकथनीय माशविक अत्याचारों ने

डाक्टर जी को झकझोर दिया और उन्हें बहुत कुछ नये ढंग से विचार करने के लिए विवश कर दिया ।

कारागार से मुक्त होकर जब वे नागपुर के सार्वजनिक जीवन में पुनः उतरे, तब मुसलमानों की दादागिरी स्थान-स्थान पर दिखाई दे रही थी । हिन्दुओं के जुलूसों को मस्जिदों के सामने रोके जाने की घटनाएँ नित्य घट रही थीं और उसके कारण वातावरण में तनाव फैला हुआ था । डाक्टर साहब ने हिन्दु समाज में जागृति उत्पन्न कर राजे लक्ष्मणराव भौंसले के सहयोग से प्रचंड 'दिंडी'* सत्याग्रह' का आयोजन करवाया । उस सत्याग्रह का बड़ा बोलबाला हुआ और वह सफल हुआ ।

दिंडी= धार्मिक शोभायात्रा जिसमें झांकी, भजनमंडली आदि का समावेश होता है ।

लगभग इन्हीं दिनों में डाक्टर साहब हिन्दु महासभा के काम में जुटे । यद्यपि १९२२ से १९२५ तक के तीन वर्षों में डाक्टर साहब सार्वजनिक कार्यों में पूरे जोर-शोर से भाग लेते रहे, किंतु उनका मन अपने जीवनकार्य की खोज में लगा हुआ था । वह काल उनके गहरे विचार-मंथन का काल कहा जा सकता है । तरुणों के साथ उनका सम्पर्क बढ़ रहा था; इतिहास का आलोडन हो रहा था । इस मंथन में से अमृत प्रकट हुआ । उन्हें भावी मार्ग के दर्शन हुए! अब उनका असमंजस समाप्त हो चुका था । संघ-स्थापना का विचार मन में पक्का हो गया ।

नयी डगर मिल गयी

'संघ की स्थापना'– इन तीन शब्दों में डाक्टर जी के चिंतन का सार समाया हुआ था । संघ याने हिन्दुओं की संगठित शक्ति । हिन्दुओं की संगठित शक्ति इसलिए कि हिन्दु ही इस देश के भाग्य-निर्माता हैं । वे इसके स्वाभाविक स्वामी हैं । उनका ही यह देश है और उन पर ही इस देश का उत्थान और पतन निर्भर है । इतिहास का निष्कर्ष है कि यह हिन्दु राष्ट्र है । तत्कालीन परिस्थिति का भी वही संकेत था । वे इस व्यावहारिक निष्कर्ष पर पहुँचे कि यदि अलगाववाद पर चलने वाले मुस्लिम कट्टरपंथियों तथा उनको उकसाने वाले अंग्रेजों का सफलतापूर्वक सामना करना है तो उसका एकमात्र उपाय यह है कि यहाँ के वास्तविक राष्ट्रीय समाज याने हिन्दु समाज को संगठित किया जाय ।

हिन्दु राष्ट्र के सिद्धान्त को डाक्टर साहब ने संघ का आधारभूत सिद्धान्त बनाया । उसे व्यवहार में उतारने का उन्होंने बीड़ा उठाया । केवल सिद्धान्त का सही होना ही पर्याप्त नहीं है । उसे यदि दुनिया से मनवाना हो तो उसके पीछे प्रबल शक्ति खड़ी करनी पड़ती है । शक्ति संगठन में होती है । अतः हिन्दुओं की ऐसी अजेय शक्ति खड़ी करना उनके जीवन का एकमेव कार्य बन गया जिससे हिन्दु समाज और उसके देश हिन्दुस्थान की ओर टेढ़ी नजर से देखने का भी किसी को साहस न हो । उनकी दृष्टि में समस्त समस्याओं को सुलझाने का एकमेव मार्ग भी यही था । किन्तु अन्तिम ध्येय तक पहुँचने के लिए राजनीतिक स्वतंत्रता अनिवार्य थी । वह इस मार्ग का पहला और महत्त्वपूर्ण पड़ाव था ।

अनोखा तंत्र

डाक्टर साहब जिन दिनों अपना जीवनकार्य तय कर रहे थे, उन दिनों हिन्दु राष्ट्र का विचार वायुमण्डल में पहले से ही विद्यमान था। स्वातंत्र्यवीर सावरकर ने १९२२ में ही 'हिन्दुत्व' नामक खोजपूर्ण पुस्तक की रचना की थी। उसके पहले स्वामी विवेकानंद से लेकर अन्य अनेक लोगों को भी राष्ट्र के संबंध में यही विचार मान्य था। संगठन की बात भी नयी नहीं थी। किन्तु प्रत्यक्ष में किसी ने संगठन के कार्य को हाथ में नहीं लिया था। यह भी स्पष्ट कल्पना किसी के पास नहीं थी कि संगठन कहते किसे हैं और वह कैसे खड़ा किया जाता है। डाक्टर साहब विविध आन्दोलनों, सभा-सम्मेलनों, मंडलों, युवा-संगठनों का प्रत्यक्ष अनुभव लेते हुए अखण्ड चिन्तन कर रहे थे कि विशुद्ध देशभक्ति से प्रेरित, व्यक्तिगत अहंकार से मुक्त, अनुशासित और चरित्रवान लोगों का निर्माण करने का कार्य कोई नहीं कर रहा है; उसके लिए कोई व्यवस्था ही नहीं है। इसलिए लहरें समय-समय पर उठती हैं और विलीन हो जाती हैं। असहयोग आन्दोलन में भाग लिये हुए ऐसे अनेक लोगों को उन्होंने देखा था जो देश, समाज, स्वतंत्रता आदि सब भूलकर अपना स्वार्थ साधने के पीछे लग गये थे।

इसलिए सार्वजनिक कार्य करने के जो तरीके उन दिनों प्रचलित थे और स्वतंत्रता-प्राप्ति के लिए जिस प्रकार के प्रयत्न किये जा रहे थे, उनसे अलग हटकर उन्होंने अपनी प्रतिभा से 'शाखा' की एक नयी पद्धति खोज निकाली। अनुशासनपूर्वक नित्य चलायी जा सकने वाली इस पद्धति में स्थायी संस्कार देने की क्षमता थी। इस पद्धति की मुख्य बात यह थी कि नियमित रूप से कुछ समय देने की लोगों को आदत डाली जाय और उनके मन की धीरे-धीरे राष्ट्र के लिए ही तन-मन-धन पूर्वक जीने की तैयारी करवायी जाय। हिन्दु राष्ट्र के उत्थान के लिए ऐसे कार्य का जाल देश भर में फैलाना डाक्टर साहब को आवश्यक लगा और उन्होंने मन ही मन ऐसा करने की ठान ली।

संघ का बीजारोपण

संगठन की अपनी यह कल्पना उन्होंने अनेकों को बतायी और उस पर उनसे चर्चा भी की। किन्तु उन दिनों के बड़ी आयु के सार्वजनिक कार्यकर्ताओं को वह ठीक से समझ में नहीं आयी। अंत में मुट्ठी भर तरुणों की एक बैठक बुलाकर डाक्टर साहब ने घोषणा कर दी कि "हम संघ की स्थापना कर रहे हैं।" वह युगाब्द ५०२७ अर्थात् सन् १९२५ की विजयादशमी का पवित्र दिन था। इस पहली बैठक में संघ-स्थापना की घोषणा अवश्य हुई, किन्तु उसके नाम में न तो 'राष्ट्रीय' शब्द का प्रयोग हुआ था और न ही 'स्वयंसेवक' शब्द का। फिर भी, ऐतिहासिक महत्त्व की बात यह कि उस दिन संघ-कार्य का बीज बोया गया। लम्बे चिन्तन के पश्चात् उन्होंने अपने जीवन-कार्य का शुभारंभ पुरुषार्थ की प्रेरणा देने वाले उस राष्ट्रीय पर्व पर किया। उस समय डाक्टर साहब की उमर मात्र ३६ साल थी।

राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ आज हमें शाखाओं-उपशाखाओं से युक्त एक विशाल

वटवृक्ष के रूप में दिखाई दे रहा है। किन्तु हम शायद यह नहीं जानते कि उसका आरंभ कैसे हुआ। सोचने पर यही भाव मन में आता है कि डाक्टर साहब ने तो चमत्कार ही कर डाला। एक बिल्कुल सामान्य सा दिखने वाला आदमी खड़ा होता है और घोषणा करता है कि "भारत हिन्दु राष्ट्र है।" और, उसकी स्वतंत्रता व चिरन्तन सामर्थ्य के लिए हिन्दुओं का राष्ट्रव्यापी संगठन खड़ा करने का संकल्प लेता है। उसके पास न पैसा है, न कोई साधन; पीछे न कोई बड़ा नेता है और न हिन्दु राष्ट्र के विचार को जनता में मान्यता ही है। उल्टे, परिस्थिति पूरी तरह विपरीत है। हिन्दु समाज अनेक जाति, पंथ, भाषा और प्रान्तों में विभाजित होने के कारण दीर्घकाल से गुलामी में रहता आ रहा था। यह बात अच्छे-भले लोगों तक के गले नहीं उतर रही थी कि परायों की भेदनीति से प्रभावित यह समाज हिन्दु के नाम पर कभी संगठित भी हो सकता है। हिन्दु राष्ट्र की बात समझना तो दूर, वैसा बोलना भी निरा पागलपन माना जाता था। ऐसी विपरीत परिस्थिति में डाक्टर साहब हिन्दु राष्ट्र कर साक्षात्कार कर दृढ़तापूर्वक, आत्मविश्वास के साथ खड़े हुए और संगठन की अपनी कल्पना को उन्होंने साकार कर दिखाया। संस्कृत में कहावत है—"क्रियासिद्धि : सत्वे भवति महतां नोपकरणे", अर्थात् बड़े लोगों की सफलता उनके सत्व पर निर्भर हुआ करती है, साधनों पर नहीं। इस कहावत को उन्होंने सत्य सिद्ध कर दिखाया।

संगठन का नामकरण

सन् १९२५ की विजयादशमी के दिन संघ की स्थापना तो हो गयी, किन्तु उसकी पूरी कार्यपद्धति तब तक निश्चित नहीं हुई थी। वह धीरे-धीरे विकसित हुई। विकास की यह प्रक्रिया डाक्टर साहब के जीवनकाल में सतत् चलती रही। सबसे पहले नाम निश्चित हुआ— 'राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ', और वह भी सदस्यों के साथ खुले मन से चर्चा करने और उनके विचारों को ध्यान में लेने के बाद।

उन दिनों हिन्दु संगठन को राष्ट्रीय कहना अद्भुत लगने वाली बात थी। उस समय 'हिन्दु महासभा' थी और हिन्दुओं की अन्य छोटी-बड़ी संस्थाएँ भी थीं। किन्तु राष्ट्रीय काम तो वही माना जाता था जिसमें हिन्दु, मुसलमान, ईसाई, पारसी आदि सबका समावेश हो। 'इंडियन नेशनल कांग्रेस' को सर्वत्र एक 'राष्ट्रीय' संस्था माना जाता था। ऐसी स्थिति में संघ को 'राष्ट्रीय' नाम देना प्रचलित कल्पनाओं से बहुत भिन्न दिखने वाली बात थी। किन्तु डाक्टर साहब ने विचारपूर्वक यही नाम चुना। नामकरण की बैठक में उन्होंने स्पष्ट रूप से समझाया कि हिन्दुस्थान में हिन्दुओं का संगठन राष्ट्रीय ही कहलायेगा। उसे साम्प्रदायिक नहीं कहा जा सकता। हिन्दुओं का कोई भी कार्य राष्ट्रीय ही माना जाना चाहिए। इस भूमिका के संबंध में डाक्टर साहब ने कभी समझौता नहीं किया। उनके जीवन की अनेक घटनाओं व उनके कथनों को देखने पर यह स्पष्ट पता चलता है कि इस सम्बन्ध में उनके मन में जरा भी संदेह नहीं था।

'स्वयंसेवक' शब्द की भी उन दिनों सामाजिक जीवन में बड़ी दयनीय स्थिति थी। आज भी वह पूरी तरह ठीक नहीं हो पायी है। स्वयंसेवक का अर्थ माना जाता था—नेताओं द्वारा बताये गये ऐसे छोटे-मोटे काम करने वाला, जिनमें दिमाग लगाने की

जरूरत नहीं पड़ती । नेतागण स्वयंसेवकों द्वारा कुर्सी-टेबलें लगाना-हटाना, दरियाँ बिछाना-समेटना, संदेश लाना-ले जाना आदि काम करवा लेते थे । डाक्टर साहब को नागपुर कांग्रेस अधिवेशन के अवसर पर स्वयंसेवकों के बारे में ऐसा ही अनुभव प्राप्त हुआ था । वे 'राष्ट्रीय' और 'स्वयंसेवक' दोनों शब्दों को एक भिन्न अर्थ देने में सफल हुए । ऐसी कल्पना उन्होंने प्रारंभ से ही प्रचलित की कि स्वयं की प्रेरणा से देश के लिए कष्ट उठाने वाला, निःस्वार्थ बुद्धि से समय देनेवाला, देश के काम के लिए अगुवाई करने वाला और सब कुछ समर्पण करने के लिए तैयार रहने वाला, अनुशासन का बंधन स्वेच्छा से स्वीकार करने वाला तथा तीक्ष्ण बुद्धि से सम्पन्न, देश-भक्ति से भरा हुआ कार्यकर्ता ही स्वयंसेवक है । स्वयंसेवक के सम्बन्ध में यह धारणा उन्होंने किसी की नहीं बनने दी कि "जो आज्ञा" कहकर नेताओं के काम आँख मूदकर कर देने वाला व्यक्ति स्वयंसेवक है । उन्होंने सबके मनों में स्वयंसेवक के प्रति प्रतिष्ठा का भाव अंकित करने का सदैव प्रयत्न किया । यदि कोई कहता कि "अमुक काम के लिए स्वयंसेवक भेज दीजिए" तो वे स्पष्ट "ना" कर देते थे । कई लोग पैसे देने की बात भी किया करते थे । ऐसे लोगों की नासमझी वे स्वयंसेवकों द्वारा ही दूर करवा देते थे ।

लेने के लिए नहीं, देने के लिए

'संघ' शब्द का भी प्रचलित अर्थ डाक्टर साहब को उचित नहीं लगता था । 'व्यापारी संघ', 'हरिजन सेवक संघ' आदि शब्द-प्रयोग तो हम सुना ही करते हैं । समाज के किसी एक वर्ग के लोग जब एकत्र आते हैं तो उनका संघ तैयार हो जाता है जिसका काम उस वर्ग के हितों की रक्षा करना व उनकी कठिनाइयाँ दूर करना ही हुआ करता है । डाक्टर साहब ने 'संघ' शब्द का प्रयोग विशुद्ध राष्ट्रहित से प्रेरित होकर काम करने वाले निःस्वार्थ एवं अनुशासनबद्ध लोगों के संगठन के लिए किया । यह शब्द इतना प्रचलित हुआ कि आज संघ कहते ही राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ का चित्र ही लोगों की आँखों के सामने उभरता है । ऐसा भाव भी मन में नहीं आता कि यह संस्था किसी वर्ग, जाति या व्यवसाय से सम्बन्धित होगी । डाक्टर साहब ने संघ शब्द में राष्ट्रीय ध्येय से प्रेरित लोगों के संगठन का अर्थ रूढ़ किया और इसीलिए 'संघ' कहने पर समस्त हिन्दु समाज को समेटकर चलनेवाली व सारे राष्ट्र को व्यापने वाली हिन्दु शक्ति का बोध होता है ।

हिन्दु राष्ट्र को स्वतंत्र करने व हिन्दु समाज, हिन्दु धर्म और हिन्दु संस्कृति की रक्षा कर राष्ट्र को परम वैभव तक पहुँचाने के उद्देश्य से डाक्टर साहब ने संघ की स्थापना की । अन्य संस्थाओं की प्रचलित पद्धति में न पड़ते हुए संघ ने प्रारंभ में न तो अपना कोई संविधान बनाया, न नियम व पदाधिकारी, और न निधि की ही व्यवस्था की । उन्होंने कार्यालय और कागज-पत्र आदि व्यवस्थित करने की कभी चिन्ता नहीं की, क्योंकि उनकी दृष्टि में सबसे अधिक महत्त्व मनुष्य का और उस मनुष्य पर किये जाने वाले उन्नत संस्कारों का था । इस काम को करने के लिए उन्होंने १०-१५ वर्षों के अपने सार्वजनिक जीवन के अनुभवों से सीख लेकर अपनी प्रतिभा से एक बिल्कुल ही अनोखी कार्यपद्धति का विकास किया ।

हिन्दु राष्ट्र का लघु रूप

हिन्दु राष्ट्र के विचार को तो डाक्टर साहब की देन नहीं कहा जा सकता किन्तु हिन्दुओं का राष्ट्रव्यापी संगठन करने के लिए उन्होंने जिस कार्यपद्धति का निर्माण किया, उसे अवश्य ही उनकी एक अनमोल देन मानना होगा। डाक्टर साहब हिन्दु राष्ट्र का विचार एक स्वयंसिद्ध सत्य के रूप में सबके सामने रखा करते थे। उस संबंध में विशेष चर्चा भी वे प्रायः नहीं करते थे। उनका कहना था कि इस विचार पर अविचल श्रद्धा होनी चाहिए। 'हिन्दु कौन?' जैसे प्रश्नों पर उन्होंने प्रायः चर्चा नहीं की। विशिष्ट कार्यपद्धति द्वारा मनुष्यों को जोड़ने व उन्हें संस्कारित करने पर उनका मुख्य जोर था।

दिन-प्रतिदिन लगने वाली संघ की शाखा डाक्टर साहब द्वारा निर्मित कार्यपद्धति का मुख्य आधार है। किन्तु संघ-कार्य का आरंभ रोज की शाखा से नहीं हुआ। उस समय मुख्यतः बैठक के रूप में ही सारे सदस्य एकत्रित होते थे। शारीरिक शिक्षा प्राप्त करने के लिए वे सब किसी न किसी व्यायामशाला में जाते थे। किन्तु कुछ ही दिनों बाद नागपुर के महाल नामक भाग में संघ की पहली दैनिक शाखा शुरू की गयी। डाक्टर साहब ने संघ-शाखा के माध्यम से बाल, तरुण और प्रौढ़ों को एकत्रित करने और उन्हें संस्कारित करने पर सबसे अधिक बल दिया। सब जगह शाखाओं का जाल फैल जाये, इसके लिए उन्होंने प्रयत्नों की पराकाष्ठा की। संघ की स्थापना के बाद जो पन्द्रह वर्ष उन्हें मिले, उस अवधि में नागपुर में तैयार हुए कार्यकर्ता न केवल विदर्भ और महाराष्ट्र में, अपितु भारत के और भी अनेक प्रान्तों में गये और वहाँ संघ-कार्य का बीज बोया। सन् १९४० के संघ-शिक्षा वर्ग में पंजाब, सिंध, दिल्ली, उत्तर प्रदेश, बिहार, महाराष्ट्र, राजस्थान, गुजरात, कर्नाटक, बंगाल, तमिलनाडु आदि अनेक प्रान्तों से स्वयंसेवक आये थे। इन स्वयंसेवकों को विदाई देते हुए, ९ जून के दिन अपनी बीमारी की अवस्था में दिये गये, अपने जीवन के अन्तिम भाषण में डाक्टर साहब ने एक बड़ा ही अर्थपूर्ण वाक्य कहा– "मैं अपनी आँखों के सामने हिन्दु राष्ट्र का छोटा रूप देख रहा हूँ।"

शाखा-पद्धति

इस वाक्य का आशय यह था कि १९४० तक किये गये प्रयत्नों के फलस्वरूप सब प्रान्तों में संघ की शाखाएँ शुरू हो गयी हैं। स्वाभाविक ही, इस कारण वह हौआ समाप्त हो गया जो प्रान्त, भाषा, जाति, पंथ आदि के भेदों के आधार पर खड़ा किया जाता था। हिंदुत्व की समान भावना के आधार पर संगठन खड़ा करने के राष्ट्रीय संकल्प को पूरा कर दिखाने का मार्ग अब खुल गया था। डाक्टर साहब ने यह विश्वास निर्मित करने में सफलता प्राप्त कर ली थी कि संघ के मंत्र और संगठन के तंत्र का निष्ठापूर्वक पालन करने से निश्चय ही सफलता मिलती है। हमें उनके द्वारा दिये गये मंत्र और तंत्र को ठीक से समझ लेना आवश्यक है जिसे वे अपने जीवन-पर्यन्त लगातार विकसित करते रहे। उस तंत्र की कुछ प्रमुख विशेषताओं का यहाँ संक्षेप में उल्लेख करना पर्याप्त होगा।

संघ-तंत्र की पहली विशेषता थी दिन-प्रतिदिन की शाखा, जिसके माध्यम से स्वयंसेवकों को नित्य-नियम से एकत्रित किया जाता है। शाखा के शारीरिक और

बौद्धिक कार्यक्रमों के द्वारा उनमें ध्येय के प्रति लगन और अनुशासन से काम करने के संस्कार डाले जाते हैं। पौरुष-निर्माण करने वाली लाठी-काठी, भाला, छुरिका, वेत्रचर्म आदि तथा मस्ती निर्माण करने वाली कबड्डी सरीखे जोशीले खेलों, सामूहिक संचलन, देशभक्ति से भरे हुए गीतों और कथाओं का समावेश इन कार्यक्रमों में किया गया। संघ के विचार और उसकी कार्यपद्धति के प्रति दृढ़ विश्वास निर्मित करने वाले भाषण (बौद्धिक) भी होने लगे। गणवेश निश्चित किया गया। घोष याने बैंड की तालों पर गणवेश पहनकर संचलन भी बाद में शुरू हो गये। शिविर होने लगे। लोग एकत्रित हों तो कार्यक्रम आवश्यक होता है और कार्यक्रमों के कारण लोग आकर्षित होते हैं। कार्यक्रम गुण-निर्माण करने में सहायक होते हैं।

यह उल्लेखनीय है कि इन कार्यक्रमों के कारण स्वयंसेवकों में यह भ्रम कभी उत्पन्न नहीं हुआ कि संघ कोई व्यायामशाला, अर्ध-सैनिक संगठन अथवा परिचर्चा-मण्डल है। उनको यह सदैव भलीभाँति स्पष्ट रहता था कि इन कार्यक्रमों का वास्तविक हेतु हिन्दु समाज को संगठित करना है। इन कार्यक्रमों का उद्देश्य हिन्दुराष्ट्र के ध्येयवाद से प्रेरित तथा एक अनुशासन में काम करने वाले व्यक्ति तैयार करना है। यह संस्कार ही संघ-कार्य की आत्मा है। कार्यक्रम तो शरीर के समान साधनमात्र हैं। साधन बदल सकते हैं, किन्तु आत्मा शाश्वत होती है। डाक्टर साहब इस बात का विशेष ध्यान रखते थे कि साध्य और साधन का यह विवेक स्वयंसेवकों में सदैव जाग्रत रहे। रोज की शाखा का आग्रह करने का उनका हेतु यह था कि स्वयंसेवक को अपने दैनिक जीवन में संघ, समाज और राष्ट्र के लिए कम से कम एक घंटे का समय बिना चूके निकालने की आदत पड़े। उसका यह स्वभाव बने कि उस एक घंटे में वह और कोई काम नहीं करेगा। संघ-स्थान पर जाने से मुझे क्या मिलेगा, यह विचार भी कभी उसके मन में न आये। उसे अपने स्वयंसेवकत्व को सार्थक करने और राष्ट्र के लिए केवल देने की ही चिन्ता हो।

गुरु और गुरुदक्षिणा

डाक्टर साहब ने स्वयंसेवकों को बताया कि भगवाध्वज हमारा गुरु है, अतः प्रतिवर्ष गुरुपूर्णिमा के दिन इसका पूजन कर दक्षिणा-समर्पण करना चाहिए। भारत में गुरुपूजन की परम्परा नई नहीं है। किन्तु इसे डाक्टर साहब का एक अनोखा आविष्कार ही मानना पड़ेगा कि गुरु के स्थान पर किसी व्यक्ति को न रखकर भारतीय संस्कृति के प्रतीकरूप भगवा ध्वज को स्थापित किया। इस पद्धति के द्वारा उन्होंने संगठन को व्यक्ति-पूजा और उससे उत्पन्न होने वाले अन्य दोषों से बचा लिया। संगठन के लिए दक्षिणा-पद्धति को स्वीकार कर जहाँ उन्होंने उसे स्वावलंबी रहने का मार्ग दिखाया, वहीं धनवानों के अनिष्ट दबाव से मुक्त रहने का उपाय भी दे दिया। इस पद्धति का एक और उत्तम पक्ष यह है कि इससे स्वयंसेवकों के मन में अधिकाधिक समर्पण की भावना का विकास किया जा सका।

उन्होंने स्वयंसेवकों में अपना गणवेश अपने पैसों से तैयार करने की तथा शिविर

आदि कार्यक्रमों की व्यवस्था और वहाँ जाने-आने का व्यय अपने ऊपर लेने की प्रेरणा जगायी । इस पद्धति से उन्होंने स्वयंसेवकों का मानस संगठन का आर्थिक भार अपने ऊपर लेने का बना दिया । इसके लिए वे यह विचार रखा करते थे कि अपने देश का काम करना हमारी जिम्मेदारी है और उस हेतु जो कुछ भी आवश्यक होगा वह हम दूसरों का मुँह न ताकते हुए स्वयं जुटायेंगे । इसी नीति का परिणाम है कि गत ६३ वर्षों में संघ को किसी की कृपा-दृष्टि पर निर्भर नहीं होना पड़ा और वह विचार तथा काम करने की अपनी पूरी स्वतंत्रता बनाये रख सका है । संघ के स्वंयसेवकों ने, जब भी आवश्यकता पड़ी, राष्ट्र के लिए तन-मन-धनपूर्वक कष्ट उठाने में कभी कोई कसर नहीं छोड़ी ।

संघ के ६ उत्सव

संघ की कार्यपद्धति का धीरे-धीरे विकास हुआ और उसमें समय-समय पर अनेक बातें जुड़ती चली गयीं । विजयादशमी, मकर-संक्रान्ति, वर्ष-प्रतिपदा, गुरु-पूर्णिमा व रक्षाबन्धन के परम्परागत उत्सव संघ-शाखाओं द्वारा मनाये जाने हेतु चुने गये । इन उत्सवों को नया राष्ट्रीय और सामाजिक अर्थ दिया गया और उन्हें जनसंम्पर्क का प्रभावी माध्यम बनाया गया । इन पाँच परम्परागत उत्सवों के साथ डाक्टर साहब ने 'हिन्दु साम्राज्य दिवस' का छठा उत्सव भी प्रचलित कर स्वयंसेवकों व समाज के सामने असंदिग्ध रूप से यह बात रखी कि संघ क्या करना चाहता है ।

वैसे शिवजयन्ती का उत्सव लोकमान्य तिलक ने राष्ट्रीय जागृति के माध्यम के रूप में प्रारंभ किया था । डाक्टर साहब ने उसे 'हिन्दु साम्राज्य दिनोत्सव' नाम देकर अपने राष्ट्रीय लक्ष्य को पूरी तरह स्पष्ट कर दिया । शिवाजी महाराज ने 'हिंदवी स्वराज्य' स्थापित किया था । डाक्टर साहब स्वराज्य का अर्थ समझाते हुए कहते थे कि प्राचीन काल से भारत हिन्दुओं का ही देश है, इसलिए यहाँ का राष्ट्र-जीवन उनके द्वारा ही समृद्ध किया जाना चाहिए और उनकी ही शक्ति एवं सामर्थ्य के आधार पर यह स्थिति आनी चाहिए कि उसके ऊपर आक्रमण या आघात करने का किसी को साहस ही न हो । उनकी दृष्टि में 'हिन्दुओं के साम्राज्य' की कल्पना यह थी कि हिन्दुओं का सांस्कृतिक प्रभाव भारत के बाहर भी पड़े और संसार के लोग हिन्दुओं के श्रेष्ठ जीवन-मूल्यों का अनुसरण करें । हिन्दु साम्राज्य दिवसोत्सव प्रारंभ करने का यही हेतु था और यही है भारत का राष्ट्रीय ध्येय ।

प्रतिज्ञा-पद्धति का शुभारम्भ

डाक्टर साहब प्रार्थना और प्रतिज्ञा की संस्कार-क्षमता अच्छी तरह जानते थे, इसलिए उन्होंने इनको भी अपनी कार्यपद्धति में स्थान दिया । प्रतिज्ञा दिलाने का पहला कार्यक्रम १९२८ के मार्च महीने में नगर से दूर एक शान्त, सुरम्य स्थान पर सम्पन्न हुआ जिसमें ९९ स्वयंसेवकों ने भाग लिया । इस पहली टोली के अधिकांश स्वयंसेवकों ने संघ का कार्य अक्षरशः जीवन भर निभाया । उनमें से जो अभी जीवित हैं वे आज भी काम में जुटे हुए हैं ।

प्रार्थना का नया रूप

प्रारंभ में संघ की प्रार्थना में एक छन्द हिन्दी का और एक मराठी का था और महाराष्ट्र से बाहर की शाखाओं में भी यही प्रार्थना होती थी। पर जब संघ-कार्य कई प्रान्तों में फैल गया, तब डाक्टर साहब के मन में ऐसी प्रार्थना तैयार करने का विचार आया जो देश भर में सहजता से कही जा सके और जिसके द्वारा स्वयंसेवकों को संघ के विचारों और ध्येय का नित्य स्मरण होता रहे। साथ ही, किसी भी सम्प्रदाय के व्यक्ति को उसे कहने में कोई अड़चन न मालूम पड़े। इस दृष्टि से सन् १९३९ में नागपुर से ३० मील दूर सिंदी नामक स्थान पर संघ के प्रमुख कार्यकर्ताओं की एक बैठक हुई। उसमें प्रार्थना तथा कार्यपद्धति पर विस्तार से विचार हुआ। उसके बाद संघ में संस्कृत भाषा में रचित प्रार्थना और आज्ञाएँ प्रारंभ हुईं।

संघ की कार्यपद्धति की एक और विशेषता ध्यान देने योग्य है। वह इतनी सरल है कि बड़ा हो या छोटा, पढ़ा हो या अपढ़, गरीब हो या अमीर, सभी इसके द्वारा समान रूप से कार्य कर सकते हैं। इसकी सरलता देखकर अनेक लोगों को विश्वास नहीं होता कि यह परिणामकारी भी हो सकती है। किन्तु होमियोपैथी की छोटी-छोटी गोलियों के समान इसकी परिणाम देने की क्षमता अब पूरी तरह सिद्ध हो चुकी है, क्योंकि इसने समाज के साधारण लोगों में से असाधारण कार्य करने वाले हजारों स्वयंसेवक तैयार किये हैं।

परिवार-भाव

यह तो हुआ संघ की कार्यपद्धति का संघ-शाखा पर दिखाई देने वाला रूप। किन्तु उस कार्य-पद्धति में और भी कई बातें थीं जिन्हें डाक्टर साहब ने अपने आचरण में उतारा और जो बाद में बाल व तरुण स्वयंसेवकों के भी आचरण का अंग बन गयीं। संघ-शाखा का चैतन्य और उसकी सतत् वृद्धि उनका ठीक प्रकार से पालन करने पर ही निर्भर है। उनमें सब से महत्त्वपूर्ण बात संघ के स्वयंसेवकों के बीच कुटुम्ब जैसे प्रेम, आत्मीयता और विश्वास से परिपूर्ण संबंधों का निर्माण करना है। एक दूसरे के घर जाना, सहज रीति से इकट्ठे होकर कार्य बढ़ाने की योजनाएँ बनाना, किसी को शाखा में अनियमित और निष्क्रिय न होने देना, कठिनाई के समय एक दूसरे की सहायता करना आदि अनेक उपायों से संगठन को सुदृढ़ बनाने की आदत डाक्टर साहब ने स्वयंसेवकों में डाली। प्रारंभ में डाक्टर साहब स्वयं अनेक स्वयंसेवकों के घर जाया करते थे, स्वयंसेवकों के पालकों से बातचीत किया करते थे और ऐसे बन जाते थे मानो उस कुटुंब के एक सदस्य हों।

डाक्टर साहब इस बात का बहुत आग्रह किया करते थे कि स्वयंसेवक नये-नये मित्र बनायें और उन्हें शाखा में लायें। नागपुर में अपने घर की जिस अटारी पर वे बैठा करते थे, उसके द्वार स्वयंसेवकों के लिए सदा खुले रहते थे। आसपास १४ साल से २० साल तक की उमर के तरुणों का वहाँ सदा जमघट बना रहता था। बीच-बीच में सरौता और सुपारी का प्रयोग होता रहता था और डाक्टर साहब अपने सार्वजनिक जीवन के अनुभव सुनाया करते थे। हँसी-विनोद के फौवारे उड़े रहते थे। डाक्टर साहब बीच-बीच में

कुछ प्रश्न भी पूछ लिया करते थे। घंटों गपशप चला करती थी और सभी लोग अड्डा मारे वहीं जमे रहते थे। ऐसी बैठकों द्वारा ही डाक्टर साहब ने संस्कार दिये, उनमें उचित-अनुचित का विवेक जगाया, उनकी ध्येयनिष्ठा की धार प्रखर की और उनमें आपस के स्नेहभाव को बढ़ाया।

मुखिया हो तो ऐसा

स्वयंसेवकों के साथ डाक्टर साहब की यह समरसता एक अनोखी बात थी, अन्य संस्थाओं में नेताओं और अनुयायियों के बीच दूरी दिखाई देती है। डाक्टर साहब ने अपनी संगठन-कुशलता से उसे यहाँ बनने ही नहीं दिया। स्वयंसेवकों को डाक्टर साहब के लिए आकर्षण तो था ही, उनके प्रति आदर का भाव भी सबके मन में बना रहता था। नागपुर के बाहर भी जहाँ कहीं डाक्टर साहब जाया करते थे, वहाँ भी ऐसी ही बैठकें विशेषकर रात के समय जमा करती थीं। इस कारण डाक्टर साहब को पूरा आराम भी नहीं मिल पाता था। किन्तु संघ-कार्य शुरू कर देने के बाद डाक्टर साहब ने विश्राम का विचार भी कभी अपने मन में नहीं आने दिया। कार्य की वृद्धि के लिए उन्होंने अपना सारा जीवन झौंक दिया। संघ-कार्य के प्रति वे समर्पित हो चुके थे। उन्होंने व्यक्तिगत जीवन की समस्याओं और कठिनाइयों को न कभी महत्त्व दिया और न कभी उनका रोना रोया। उनका यह चलता-फिरता आदर्श जीवन उनके सम्पर्क में आने वाले स्वयंसेवकों के मनों पर संगठन की कार्यपद्धति की सही छाप अंकित कर देता था। वे सदा कहा करते थे कि शाखा के एक घंटे के कार्यक्रमों के परिणाम दिन के शेष २३ घंटों के कार्यकलापों पर अंकित होने चाहिए।

राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ के काम का विस्तार करते समय वे इस बात की बहुत चिन्ता किया करते थे कि संघ के अकारण ही कोई शत्रु न बनें। पत्र लिखते समय भी उनका यही नियम रहता था कि ऐसी कोई बात उसमें न लिखी जाय जिससे किसी के मन को चोट लगे अथवा जिसका कोई दुरुपयोग कर सके। पहले क्रान्ति-कार्य करते समय ही उनका यह गुण प्रकट हो चुका था। उस समय यथासंभव वे लिखापढ़ी को टालते थे। नाम, ग्राम, हिसाब, दी हुई चीजें, सहकारियों का प्रवास आदि सब बातें उनके दिमाग में ही रहा करती थीं। इस नीति के कारण डाक्टर साहब स्वय कहीं नहीं फँसे। और ऐसा भी नहीं हुआ कि डाक्टर साहब के कारण किसी पर सरकार की टेढ़ी नजर पड़ी हो। उल्टे, सहयोगियों द्वारा उतावलेपन में किये गये कार्यों के कारण पैदा हुई समस्याओं को अवश्य निपटाना पड़ता था।

नेता जी से भेंट

डाक्टर साहब संघ की सुरक्षा के बारे में स्वाभाविक ही सदैव सतर्क रहते थे, किन्तु इसके कारण उनके मन में उन देशभक्तों के प्रति सम्मान में तनिक भी कमी नहीं आयी और न उनसे सम्बन्ध टूटे जो मातृभूमि को मुक्त करने के लिए सिर हथेली पर रखकर सशस्त्र संघर्ष किया करते थे। यही नहीं, समय पड़ने पर ऐसे देशभक्तों की सहायता

करने हेतु भी वे तत्पर रहते थे । नेताजी सुभाषचन्द्र बोस के साथ डाक्टर साहब की १९२८ में कलकत्ता कांग्रेस के समय भेंट हुई थी और उस समय बातचीत में नेताजी को डाक्टर साहब की हिन्दु संगठन की कल्पना पसंद आयी थी । बाद में प्रत्यक्ष कार्य देखकर संघ के प्रति उनका आकर्षण इतना बढ़ा कि उन्हें लगने लगा कि उसका सहयोग अपने कार्य में लेना चाहिए । सुभाष बाबू ने इस सम्बन्ध में दो बार डाक्टर साहब से मिलने का प्रयत्न भी किया– एक बार १९३९ में, जब डाक्टर साहब नासिक के पास देवलाली में बीमार थे, और दूसरी बार १९४० में नागपुर में । किन्तु दोनों ही बार वह संभव नहीं हो पाया । १९४० में जब नेताजी नागपुर आये तब तो डाक्टर साहब की बीमारी इतनी गम्भीर अवस्था में थी कि अगले दिन वे संसार से विदा ही हो गये । शहीद भगतसिंह जी भी डाक्टर साहब से मिले थे । डाक्टर साहब ने भगतसिंह के सहयोगी राजगुरु को भूमिगत अवस्था में कुछ समय तक उमरेड में श्री भैया जी दाणी के घर पर सुरक्षा हेतु रखा था । इन सब बातों का उल्लेख यही बताने के लिए किया गया है कि देश की स्वतंत्रता के लिए कार्य करने वाले अन्य देशभक्तों और डाक्टर साहब में परस्पर कितनी आस्था थी ।

सरसंघचालक बने

यद्यपि प्रधानतः डाक्टर साहब ही संघ की कल्पना और कार्यपद्धति को साकार रूप दे रहे थे और उसके विस्तार का भार भी परिश्रमपूर्वक वहन कर रहे थे, किन्तु प्रारंभ के वर्षों में उनके पास संघ का कोई पद अधिकृत रूप से नहीं था । अपनी विशिष्ट भूमिका के कारण वे संघ के स्वयंसिद्ध नेता थे । जैसे-जैसे कार्य बढ़ने लगा, वैसे-वैसे उनके सहयोगियों को अनुभव होने लगा कि संघ का सूत्रबद्ध संचालन करने के लिए एक सर्वोच्च पद की स्थापना करना आवश्यक है और उस पद पर डाक्टर जी को ही बैठाया जाना चाहिए । सन् १९२९ के नवम्बर महीने में संघ के कार्यकर्ताओं ने निश्चय किया कि डाक्टर साहब को इसके बाद 'सरसंघचालक' माना जाय और देश की सब शाखाएँ उनके मार्गदर्शन के अनुसार चलें । सहयोगियों का यह आग्रह उन्होंने स्वीकार तो कर लिया, किन्तु अनिच्छा से क्योंकि वे संगठन-कार्य पद के कारण नहीं, ध्येय-निष्ठा से करने की परम्परा डालना चाहते थे । इसीलिए संघ में पद के लिए कोई झगड़ा नहीं होता । पद पर बैठने से व्यक्तिगत लाभ तो कुछ होता ही नहीं, उल्टे अपेक्षा यही रहती है कि अधिकार-पद पर बैठा व्यक्ति अधिक कार्य करे ।

डाक्टर साहब ने स्वयं अनेक संस्थाओं में काम किया था, किन्तु कहीं भी पद अथवा प्रतिष्ठा की उन्होंने इच्छा नहीं रखी । उनके मन को ऐसा भाव कभी छू नहीं सका कि 'मैंने संघ का काम शुरू किया है, इसलिए संघ का प्रमुख मुझे ही बनाना चाहिए' । एक सामान्य स्वयंसेवक के नाते काम करने में ही उन्हें आनंद होता । उनके चरित्रकार नाना पालकर ने अपने ग्रंथ में उनकी एक टिप्पणी का उल्लेख किया है जो उन्होंने सरसंघचालक बनने के लगभग चार वर्ष बाद लिखी थी । उस टिप्पणी से उनके मन की ऊँचाई का दर्शन होता है । उन्होंने लिखा है–''मैं अच्छी तरह जानता हूँ कि इस संघ का

जन्मदाता या संस्थापक मैं नहीं हूँ, बल्कि आप लोग ही हैं । आपने जिस संघ को जन्म दिया है उसकी साज-संभाल आप लोगों की इच्छा व आज्ञा से मैं कर रहा हूँ और जब तक आप लोगों की इच्छा व आज्ञा रहेगी, तब तक करता रहूंगा । इस काम को करते समय कितने भी कष्ट या मानापमान क्यों न सहन करने पड़ें, मैं अपना पैर कभी पीछे नहीं हटाऊंगा । किन्तु यदि आप लोगों को लगता हो कि मैं इस काम के योग्य नहीं और मेरे कारण संघ को हानि हो रही है, तो आप दूसरा योग्य मनुष्य इस स्थान के लिए चुन सकते हैं । आपकी आज्ञा से जितने आनंद के साथ मैंने इस पद को स्वीकार किया, उतने ही आनंद के साथ आपके द्वारा चुने हुए व्यक्ति को सारे अधिकार सौंपकर उसी क्षण से उसके आज्ञाकारी स्वयंसेवक के नाते व्यवहार करने लगूंगा, क्योंकि मेरे लिए महत्त्व व्यक्ति का न होकर संघ-कार्य का है और संघ के भले के लिए कोई भी बात करने में मुझे किसी भी प्रकार के अपमान का बोध नहीं होगा ।''

जंगल सत्याग्रह

संघ का हित ध्यान में रखकर सरसंघचालक पद की जिम्मेदारी अन्य व्यक्ति को सौंपने का अवसर भी उनके जीवन में आया । बात १९३० में महात्मा गांधी द्वारा संचालित सत्याग्रह आन्दोलन के समय की है । उस आन्दोलन में महात्मा गांधी ने भिन्न-भिन्न सरकारी कानूनों को तोड़ने के लिए जनता का आह्वान किया था । स्वयं गांधी जी ने दांडी-यात्रा द्वारा नमक सत्याग्रह आरंभ कर दिया था । डाक्टर साहब ने सब जगह सूचना भिजवायी कि संघ इस सत्याग्रह में भाग नहीं लेगा, किन्तु जिन्हें व्यक्तिशः इसमें भाग लेना हो उन्हें मनाही नहीं है । इसका अर्थ यह था कि संघ में जिम्मेदारी वहन करने वाला कार्यकर्ता सत्याग्रह में भाग नहीं ले सकता था । डाक्टर साहब ने व्यक्तिशः सत्याग्रह में भाग लेने का निश्चय किया था, क्योंकि कांग्रेस से मतभेद होते हुए भी स्वतंत्रता की लड़ाई से अलग रहना उनके स्वभाव के विरुद्ध था । वे कांग्रेस के आन्दोलन में एक बार कारागार जा भी चुके थे और पुनः कारागार जाने की तैयारी थी । ऐसा विश्वास भी डाक्टर साहब के मन में था कि वहाँ जो स्वातंत्र्यप्रेमी, त्यागी व प्रतिष्ठित मंडली साथ में रहेगी, उनसे संघ के सम्बन्ध में चर्चा कर उन्हें काम के साथ जोड़ा जा सकेगा ।

उन्होंने सरसंघचालक पद के सारे सूत्र कुछ समय के लिए डाक्टर ल. वा. परांजपे के हाथों सौंप दिये ताकि स्वयं वे व्यक्ति के नाते सत्याग्रह में भाग ले सकें । और १ जुलाई १९३० के दिन उन्होंने यवतमाल के पास जंगल सत्याग्रह किया । लगभग दस हजार का समुदाय इस सत्याग्रह को देखने के लिए वहाँ इकट्ठा हुआ था । डाक्टर साहब और उनके सहयोगियों को बंदी बनाया गया और उन पर मुकदमा चलाकर उन्हें ९ मास के कारावास की सजा सुनायी गयी और अकोला के कारागार में रखा गया ।

उन्हें यह चिन्ता नहीं थी कि उनकी अनुपस्थिति में संघ का कार्य कैसे चलेगा । उन तरुण कार्यकर्ताओं पर उन्हें पूरा विश्वास था जिन्हें ५ साल तक अखण्ड परिश्रम कर उन्होंने तैयार किया था । सत्याग्रह के लिए जाने के पूर्व स्वयंसेवकों से विदाई लेते समय उन्होंने ऐसे आन्दोलनों के सम्बन्ध में संघ की भूमिका स्पष्ट की थी । स्वयंसेवकों ने उसे ध्यान देकर सुना था । इस भाषण में उन्होंने दो अति महत्त्वपूर्ण विचार सबके सामने रखे

थे । ये विचार एक प्रकार से उनके जीवन के दो महत्त्वपूर्ण सूत्र थे ।

पहला विचार यह था कि ऐसी परिस्थितियों का उपयोग राष्ट्र-जागरण के अपने मूलभूत कार्य के लिए कर लेना चाहिए । दूसरा विचार था कि कारागार में जाना ही कोई देशभक्ति नहीं है । ऐसी दिखाऊ देशभक्ति में बहना उचित नहीं है । उनका आग्रह होता था कि समय आने पर देश के लिए मरने की तैयारी अवश्य रखी जाय, किन्तु देश की स्वतंत्रता के लिए संगठन करते हुए जीने की भावना रखना अत्यन्त आवश्यक है ।

कारागार में भी संघ-कार्य

डाक्टर साहब ने इन सूत्रों को स्वयं अपने जीवन में उतारा था । किसी भी परिस्थिति में उनकी ध्येयनिष्ठा मंद नहीं पड़ी । वे तात्कालिक असफलता से कभी निराश और निष्क्रिय नहीं हुए । डाक्टर साहब की ९ मास की कारावास अवधि में कार्यकर्ताओं ने अथक परिश्रम कर काम को सतत् आगे बढ़ाया । इस बढ़ते हुए कार्य का समाचार डाक्टर साहब को कारागार में मिलता रहता था । डाक्टर साहब ने भी इस पूरी कालावधि में क्षण भर के लिए भी संघ-कार्य को आँखों से ओझल नहीं होने दिया । उन्होंने कारागृह में आये समस्त नेताओं और कार्यकर्ताओं से निकट के सम्बन्ध जोड़े, उन्हें संघ-कार्य समझाया और उनसे भविष्य में कार्य के लिए सहयोग करने का आश्वासन भी प्राप्त कर लिया । कार्य-विस्तार के लिए एक बड़ी छलांग लगाने की योजना बनाकर ही वे कारागार से बाहर आये ।

उन्होंने विदर्भ क्षेत्र का व्यापक दौरा कर स्थान-स्थान पर संघ की शाखाएँ खड़ी की । विशेष बात यह कि सन् १९३२ में उन्होंने स्वातंत्र्यवीर सावरकर के बड़े भाई और श्रेष्ठ क्रान्तिकारी श्री बाबाराव सावरकर के साथ महाराष्ट्र के प्रमुख स्थलों का दौरा किया और उस क्षेत्र में संघ-कार्य का शुभारंभ किया । इसी वर्ष वे कराँची में हुए हिन्दु युवक सम्मेलन में भाग लेने के लिए भी गये । डाक्टर साहब वहाँ के अनेक हिन्दुत्वप्रेमी नेताओं से मिले । संघ-शाखाओं की स्थापना के लिए सम्मेलन में अनुकूलता दिखाई दी ।

देश के नेतृत्व से घनिष्ठ सम्पर्क

डाक्टर साहब की काम करने की पद्धति की यह भी एक विशेषता थी कि वे उन स्थानों पर अवश्य जाते थे जहाँ अपने समाज पर आये संकटों के निराकरण हेतु लोग हिन्दुत्व की भावना से इकट्ठे होते थे । वहाँ वे आपसी बातचीत द्वारा सबको संघ की आवश्यकता बताने का प्रयत्न करते थे । इसी उद्देश्य से वे हिन्दु सभा के अधिवेशनों, हिन्दु तरुणों के सम्मेलनों व परिषदों आदि में भाग लिया करते थे । उन्होंने ऐसे कार्यक्रमों के माध्यम से अनेक प्रान्तों में संघ से सहानुभूति रखने वाले प्रभावी लोग जोड़े । जब संघ के तरुण कार्यकर्ता इन प्रान्तों में काम करने के लिए गये तो ऐसे लोगों का उन्हें बहुत सहयोग प्राप्त हुआ और इस कारण वहाँ संघ की दैनिक शाखा प्रारंभ करने में भी सुविधा हुई । डाक्टर साहब के पत्र-व्यवहार में ऐसे अनेक उल्लेख प्राप्त होते हैं ।

संघ के संबंध में बड़े लोगों के मनों में अपनापन निर्मित करने और व्यक्तियों को

जोड़ने की उनकी एक और भी पद्धति थी। कोई बड़े व्यक्ति जब भी नागपुर आते तो डाक्टर साहब उनसे मिलते और उनसे संघ-शाखा पर दर्शन देने की प्रार्थना करते। शब्दों से जो बात समझाना या गले उतारना कठिन होता है, वह प्रत्यक्ष संघ-शाखा में देखकर लोगों को सहज समझ में आ जाता था। 'ज्ञानकोश' के निर्माता श्रीधर व्यंकटेश केतकर, विट्ठल भाई पटेल, पं० मदनमोहन मालवीय, बैरिस्टर तात्याराव सावरकर, नाटककार खाडिलकर, संत पाचलेगाँवकर महाराज जैसे लोग इसी प्रकार संघ के कार्यक्रमों को देखने के लिए पहुँचे और उन सबने संघ-कार्य की प्रशंसा की। उन लोगों की सूची तो बहुत लम्बी है जो संघ के उत्सवों और शिविरों में निमंत्रित किये गये तथा संघ-कार्य से प्रभावित हुए। व्यक्तिगत सम्पर्क और प्रत्यक्ष कार्य दिखाकर संघ का प्रसार करने की डाक्टर साहब की यह खास पद्धति थी। इस कारण संघ केवल कागजी घोड़ा नहीं रहा, वरन् उसे एक जीवमान और सतत् बढ़ने वाले संगठन का स्वरूप प्राप्त हुआ।

संघ और कांग्रेस

इस बात से इन्कार नहीं किया जा सकता कि देश की स्थिति के सम्बन्ध में संघ और कांग्रेस का सोचने का तरीका कुछ बातों में अलग था; किन्तु इसके होते हुए भी डाक्टर साहब अनेक वर्षों तक कांग्रेस में थे, कांग्रेस के अधिवेशनों में वे सम्मिलित होते थे, कांग्रेस के असहयोग आन्दोलनों में उन्होंने भाग लिया और दो बार कारावास भी भोगा। यही नहीं, कांग्रेस ने जब रावी-तट से सम्पूर्ण स्वातंत्र्य की घोषणा की, तब उन्होंने संघ की ओर से कांग्रेस का अभिनन्दन किया और पत्रक निकालकर सब शाखाओं को निर्देश दिया कि वे अभिनन्दन-सभा आयोजित करें। कांग्रेस के नेताओं के साथ उन्होंने अत्यन्त आदर का व्यवहार रखा। स्वयं महात्मा जी सन् १९३४ में वर्धा में संघ का शीतकालीन शिविर देखने आये थे और उन्होंने बाद में डाक्टर साहब से मिलकर संघ की नीति और कार्यपद्धति के संबंध में जानकारी प्राप्त की थी। गांधी जी के सहयोगी श्री जमनालाल बजाज ने एक लम्बा पत्र भेजकर उनसे अनेक बातों का स्पष्टीकरण चाहा था। डाक्टर साहब ने पत्र द्वारा बातचीत करने के स्थान पर प्रत्यक्ष मिलकर बात करना अधिक उचित माना और उन्हें बातचीत के लिए निमंत्रित किया था। तदनुसार जमनालाल बजाज डाक्टर जी से मिले भी थे। डाक्टर जी के एक प्रमुख सहयोगी श्री अप्पा जी जोशी वर्धा के ही थे। उनका श्री जमनालाल बजाज जी से अत्यन्त निकट का परिचय भी था। किन्तु फिर भी संघ और कांग्रेस के बीच तालमेल और सहयोग निर्मित नहीं हो सका, यह अवश्य सत्य है।

राजनीति से अलग

डाक्टर साहब ने स्पष्ट रूप से कहा था कि संघ की नीति राजनीतिक दलों से अलग रहकर हिन्दुओं का संगठन करने की है, अतः हिन्दु संगठन के कार्य में सहभागी होने की इच्छा रखने वाला किसी भी दल का सदस्य संघ में आ सकता है। संघ के प्रारंभिक काल में कांग्रेस के अनेक कार्यकर्ता संघ में काम करते थे,

किन्तु आगे चलकर कांग्रेस ने ही अपने द्वार संघ के स्वयंसेवकों के लिए बंद कर दिये। डाक्टर साहब ने संघ और कांग्रेस के बीच वैचारिक मतभेद को स्पष्ट करते हुए कहा था कि "कांग्रेस दल मुसलमानों की घातक खुशामद और हिन्दु-हितों की अक्षम्य उपेक्षा करता है। इसलिए संघ को स्वतंत्र रूप से हिन्दु-संगठन का काम करना पड़ता है। किन्तु कांग्रेस के विरोध की भावना संघ में नहीं है। कांग्रेस के कार्यकर्ताओं को यदि वैसा लगता हो तो यह उनकी भूल है।"

कांग्रेस को संघ का 'हिन्दुत्व ही राष्ट्रीयत्व है' का सिद्धान्त स्वीकार नहीं था। उसने भानमती के कुनबे वाली राष्ट्रीयता की कल्पना अपनायी थी। उसकी मान्यता थी कि भारत की भौगोलिक सीमा के अन्दर जो-जो बसते हैं, यह उन सबका राष्ट्र है। इसलिए कांग्रेस की दृष्टि में हिन्दु संगठन का काम करने वाला संघ सांप्रदायिक था। संघ के पैर पीछे घसीटने के लिए कांग्रेस ने दुष्प्रचार तो किया ही, इसके अलावा डॉ० हर्डीकर के नेतृत्व में कांग्रेस सेवादल भी शुरू करवा दिया। डाक्टर हेडगेवार स्वयंसेवकों से कहा करते थे कि वाद-विवाद के पचड़े में न पड़ते हुए लगन से काम करते रहो। बोलने वालों को उत्तर अपने आप मिल जायेगा।

स्वतंत्रता मिलने के बाद कांग्रेस दल सत्ता में आया और उसने दो बार संघ पर प्रतिबन्ध लगाया तथा संघ-विरोधी दुष्प्रचार की हद कर दी। यह तो समझ में आ सकता है कि जब हिन्दुस्थान में परायों का राज्य था तब राज्य द्वारा संघ को समाप्त करने का प्रयत्न किया जाता। किन्तु स्वतंत्रता-प्राप्ति के पश्चात् कुछ अलग अनुभव होना चाहिए था। सत्ता में आने के बाद कांग्रेस संघ की सहायता भले ही न करती किन्तु इतनी अपेक्षा तो उससे थी ही कि वह संघ के साथ अन्याय न करती।

सरकार का कोप

नागपुर से कार्य प्रारंभ होने के कारण यह स्वाभाविक ही था कि तब के मध्यप्रदेश और विदर्भ में संघ का काम पहले बढ़ता। अनेक स्थानों पर संघ के प्रभावी कार्यक्रम होने लगे। संघ के संचलन, घोष-पथक तथा आकर्षक शारीरिक कार्यक्रमों आदि के कारण अनेक लोग संघ की ओर आकर्षित होते थे। संभवतः ईर्ष्या के कारण सन् १९३२ में मध्यप्रदेश शासन ने एक परिपत्र निकालकर सरकारी कर्मचारियों को संघ में जाने की मनाही कर दी। इस पत्रक में आरोप लगाया गया था कि संघ एक राजनीतिक और साम्प्रदायिक संगठन है। आगे चलकर एक बार फिर १९३४ में सरकार ने स्थानीय स्वायत्त संस्थाओं को एक पत्रक प्रसारित कर सलाह दी कि वे अपने कर्मचारियों को संघ के कार्यक्रमों में जाने से रोकें।

इस संबंध में डाक्टर साहब ने स्वयंसेवकों को समझाया कि संघ न तो राजनीतिक है और न ही साम्प्रदायिक। वह सौ प्रतिशत राष्ट्रीय है। संघ के बाहरी कार्यक्रम यदि सरकार ने कभी अविचारपूर्वक बन्द भी कर दिये तो भी वह संघ को बंद नहीं कर सकती, क्योंकि हम लोग किसी भी बहाने एकत्रित हो सकते हैं। स्वयंसेवकों ने इकट्ठे होकर एक साथ सोने का कार्यक्रम भी किया, तो भी वह शाखा ही होगी। इसलिए सरकारी पत्रक और उसकी दमन-नीति से घबराने की कोई आवश्यकता नहीं।

सरकार की दमन-नीति का मुँहतोड़ उत्तर देने हेतु डाक्टर साहब ने इस प्रश्न को विधानसभा में उठवाया । तत्कालीन 'होम-मेम्बर' ई. राघवेन्द्रराव ने डाक्टर साहब पर 'हिटलरी पद्धति' से काम करने का आरोप सदन में लगाया था, जिसे वे सिद्ध नहीं कर सके । डाक्टर साहब के उज्ज्वल चरित्र और देशभक्ति से परिपूर्ण जीवन का विधान-सभा के सभी सम्प्रदायों के सदस्यों पर इतना प्रभाव था कि राघवेन्द्रराव के कथन को चुनौती देते हुए उन्होंने उसकी धज्जियाँ उड़ा दीं । विधान-सभा में एक कटौती प्रस्ताव स्वीकृत हुआ और उस समय के शरीफ और चौबल मंत्रिमंडल को कुर्सी से हटना पड़ा ।

संघ-स्थापना के बाद डाक्टर साहब अपने भाषणों में हिन्दु संगठन के संबंध में ही बोला करते थे । सरकार पर प्रत्यक्ष टीका नहीं के बराबर रहा करती थी । वे कहा करते थे कि संगठन से ही सारे प्रश्न हल होंगे, इसलिए हिन्दुओं को संगठित होकर अपने धर्म और संस्कृति की रक्षा करनी चाहिए । राष्ट्र की सारी जिम्मेदारी हिन्दु समाज पर है । दुर्बल होना सबसे बड़ा पाप है आदि आदि । विधान-सभा की घटना के बाद अवश्य उन्होंने संघ के उत्सवों में बोलते हुए सरकार की कठोर टीका की और कहा कि सरकार की अकल का दिवाला निकल गया है । सरकारी कामकाज का चक्र तो उल्टी दिशा में घूमा करता है । उपर्युक्त प्रसंग में सरकार को जबरदस्त मुँह की खानी पड़ी । उसके फलस्वरूप संघ के स्वयंसेवकों की हिम्मत खूब बढ़ी । उनके इस बढ़े हुए उत्साह का डाक्टर साहब ने संघ-कार्य के विस्तार के लिए उपयोग किया ।

संघ समाज का अंग

संघ और हिन्दु समाज के आपसी संबंधों के बारे में डाक्टर साहब ने जो दृष्टिकोण स्वयंसेवकों के मनों में अंकित किया वह उनकी नेतृत्व करने की विलक्षण क्षमता का प्रमाण है । संघ की स्थापना के दो वर्ष बाद की एक घटना से यह सूत्र सहज ध्यान में आता है । १९२२ के बाद से नागपुर में हिन्दुओं और मुसलमानों के मध्य तनाव चला आ रहा था । मुसलमान आक्रामक भूमिका लिये हुए थे और कोई न कोई बहाना बनाकर हिन्दुओं को छेड़ते रहते थे । यह स्थिति केवल नागपुर में ही नहीं, सारे भारत में थी और स्थान-स्थान पर उपद्रव हो रहे थे । इन उपद्रवों को डाक्टर साहब 'मुस्लिम दंगे' की संज्ञा देते थे । खिलाफत आन्दोलन असफल हो गया था और मुसलमान अपना गुस्सा भारत के असंगठित और आत्मविश्वास से शून्य, लाचार हिन्दु समाज पर निकाल रहे थे ।

मार खाने की परम्परा समाप्त

डाक्टर साहब हिन्दु समाज के तेजस्वी नेता के रूप में प्रसिद्ध थे, इस कारण उनके घर पर पत्थरबाजी होना और उनको धमकीभरे पत्र मिलना कोई अनहोनी बात नहीं थी । ऐसे तनावपूर्ण वातावरण में मुसलमानों ने दंगे भड़काने का षड्यंत्र रचा । इसके लिए १९२७ के सितम्बर महीने में उन्होंने हिन्दुओं के त्यौहार का दिन चुना । भरी दुपहरी में ठीक भोजन के समय शस्त्रधारी मुसलमानों का प्रचण्ड जुलूस "दीन दीन" और

"अल्लाहो अकबर" के नारे लगाता हुआ निकला। उनकी योजना थी कि महाल क्षेत्र में पहुँचते ही गली-कूचों में घुस जायें और त्यौहार की मस्ती में डूबे हुए असावधान हिन्दु समाज पर हमला करें तथा उनके घरों की लूटपाट करें। किन्तु गलियों में घुसते ही, उनकी कल्पना के विपरीत, लाठियों की मार से उनके सिर फूटने लगे और "तौबा-तौबा" करने की नौबत आ गयी। हिन्दु लोग सावधान थे और दंगाई मुसलमानों को सिर पर पैर रखकर भागने के अतिरिक्त और कोई चारा नहीं रहा। सारा समाज प्रतिकार के लिए सिद्ध हो गया था।

मुसलमानों के पलायन का यह समाचार शीघ्र ही बिजली की भाँति नागपुर भर में फैल गया और यह बात भी सब दूर पहुँच गयी कि किसके पुरुषार्थ का यह चमत्कार है। सबके मुँह पर एक ही चर्चा थी कि सालूबाई मोहिते बाड़े के संघ-स्थान पर रोज जमने वाले लगभग सौ साहसी तरुणों की यह करामात है जिससे एक बहुत बड़ा संकट टल गया। ऐसी प्रशंसा चारों ओर होने लगी। अब तक के दंगों का अनुभव यही था कि हिन्दु ही हर बार जबरदस्त मार खाते थे। गांधी जी की टिप्पणी भी थी कि "हिन्दु कायर है"। यह मार खाने की परम्परा समाप्त कर नया इतिहास लिखने का काम नागपुर ने ही सर्वप्रथम किया और दंगाई मुसलमानों को अच्छा खासा पाठ पढ़ाया। उसके बाद पूरे चालीस वर्ष तक नागपुर में मुसलमानों का दंगा फिर नहीं हुआ। डाक्टर साहब ने इस घटना को निमित्त बनाकर स्वयंसेवकों व समाज के मन में यही बात बैठाने का प्रयत्न किया कि जो पराक्रम प्रकट हुआ है वह हिन्दु समाज का है। संघ समाज से अलग नहीं है। ऐसे प्रसंगों पर संघ समाज को साथ लेकर ही काम करता है। जो भी श्रेय है वह हिन्दु समाज का है।

यह दृष्टि अत्यन्त मूलगामी थी और समाज में आत्मविश्वास उत्पन्न करने में सहायक सिद्ध हुई। ऐसी मनोवृत्ति को डाक्टर साहब ने कभी बढ़ावा नहीं दिया कि संकट के समय समाज कुछ न करे और स्वयंसेवक पुलिस की भूमिका लेकर रक्षा का काम करें। उनका कहना था कि जिन पर संकट है उन्हें अपनी रक्षा के लिए स्वयं कमर कसनी चाहिए, हिम्मत के साथ खड़ा होना चाहिए। स्वयंसेवक समाज का ही एक अंग है। सारे समाज के साथ वह भी अपना कर्तव्य निभायेगा। ऐसी दुर्बलता की भावना किसी भी हिन्दु के मन में आना उचित नहीं है कि 'हम अकेले हैं, हम भला कर ही क्या सकते हैं।' यह तो एक विकृति है कि हिन्दु समाज इतना बड़ा होते हुए भी प्रत्येक जन अपने आपको अकेला मानता है। डाक्टर साहब को इस बात का बहुत दुःख होता था कि जरा सी बात होते ही लोग कैसे डरकर भागते हैं और कारण बताते हैं कि "अरे भाई, मैं अकेला क्या कर सकता था?" ऐसी घटनाएँ वे स्वयंसेवकों को अपनी बैठकों में अपनी खास शैली में सुनाया करते थे और संगठन की आवश्यकता समझाया करते थे। जब भी ऐसे प्रसंग आते थे तो वे सहायता माँगने आये लोगों से कहा करते थे कि आप लोग हिम्मत से अपना कार्यक्रम करें, हम आपके पीछे हैं। अनेक वर्षों तक वे इसकी चिन्ता स्वयं करते रहे कि नागपुर के अनाथ विद्यार्थी-गृह के गणेश-विसर्जन जुलूस में कोई उपद्रव खड़ा न हो। जुलूस आदि निकालने वालों को वे प्रेरणा देते थे कि मस्जिद के सामने जाते समय बाजा बजाना बन्द करने की कायरता न दिखायें और उन्हें आश्वस्त करते थे कि कुछ गड़बड़

हुई तो वे अपने आपको अकेले नहीं पायेंगे ।

यह भावना उन्होंने कभी भी निर्मित नहीं होने दी कि संघ समाज से अलग है । संघ-स्थान पर एकत्रित होने वाले बाल-तरुणों की शक्ति वास्तव में समाज की ही शक्ति है जो शाखा-समय मात्र में अलग दिखाई देती है, किन्तु बाकी समय तो वह समाज में ही समायी रहती है । संघ की इस मान्यता के कारण उसे कभी भी सेना जैसा स्वरूप प्राप्त नहीं हुआ और संघ व समाज की एकरूपता बढ़ती गयी तथा समाज को शक्ति प्राप्त होती गयी । विकट प्रसंगों में सबको धीरज देने वाले तथा परिस्थिति का सामना करने वाले व्यक्ति भी तैयार होते गये । अपनी निःस्वार्थ सेवा व समाज के प्रति आत्मीयता का व्यवहार बरतने के कारण संघ के स्वयंसेवक जन-साधारण का विश्वास अर्जित कर सके तथा विभाजन के पूर्व और बाद के भयानक काल में सबका सहयोग लेकर समाज के बचाव का कार्य कर सके ।

गढ़नेवाला मूर्तिकार

कुशल संगठक का यह आवश्यक गुण होता है कि वह मनुष्यों के गुणों का विकास करे और उनके दोषों को दूर करते हुए उन्हें एकजुट करे तथा अपने संगठन का संख्यात्मक व गुणात्मक विकास कर ले । किन्तु किसी एक व्यक्ति में इन गुणों का होना पर्याप्त नहीं है । प्रत्येक कार्यकर्ता को इन सारे गुणों से युक्त होना चाहिए । डाक्टर साहब इस संबंध में बड़े सजग रहा करते थे । उनके जीवन के अनेक ऐसे प्रसंग बताये जा सकते हैं जब उन्होंने कार्यकर्ताओं के गुणों को प्रोत्साहित किया और दोषों परअंगुली रखी । नमूने के तौर पर दो उदाहरण देना काफी होगा ।

सन् १९३६ में महाराष्ट्र के फैजपुर नामक स्थान पर हुए कांग्रेस के अधिवेशन के समय कांग्रेस का झंडा बीच में ही अटक गया । ध्वजस्तंभ ८० फुट ऊँचा था और उस पर चढ़कर डोरी ठीक करने की हिम्मत किसी की नहीं हो रही थी । सारा कार्यक्रम रुक गया था । तभी दर्शकों में से एक तरुण आगे आया और सरसराते हुए ध्वजस्तंभ पर चढ़कर उसके अन्तिम छोर तक पहुँच गया और उसकी डोरी ठीक कर दी । ध्वज ऊपर चढ़ गया और सबने सन्तोष की साँस ली । उस तरुण की पं० जवाहरलाल नेहरू समेत सभी नेताओं ने बड़ी प्रशंसा की । उसका सम्मान करने की बात तय हुई । किन्तु तभी यह बात भी फैल गयी कि वह संघ का स्वयंसेवक है । बस, नेहरू जी का उत्साह ठंडा हो गया और सम्मान की योजना त्याग दी गयी ।

डाक्टर साहब को जब इस सारी घटना का पता चला, तब किसनसिह परदेसी नामक उस स्वयंसेवक के संबंध में उन्हें बड़ा गर्व हुआ । बाद में विशेष रूप से समय निकालकर वे उससे मिलने धुलिया गये और संघ-शाखा पर उसका अभिनन्दन कर उसे एक चाँदी का प्याला भेंट में दिया । उस समय उन्होंने किसनसिंह को अपने पास बैठाया था । कांग्रेस देश का ही काम करने वाली एक संस्था है, इस भावना से उन्होंने उस अवसर पर कहा कि "कहीं भी देश का कोई काम अटक जाये और उसे आगे बढ़ा सकने का विश्वास हम में हो, तो दल आदि का विचार न करते हुए हमें अवश्य आगे आना चाहिए ।" ऐसी घटनाओं का कितना उदात्त और उदार संस्कार समस्त स्वयंसेवकों के मनों पर होता

होगा, इसकी केवल कल्पना ही की जा सकती है । किसनसिंह तो फूला नहीं समा रहा था, क्योंकि स्वयं सरसंघचालक जी ने आकर उसका उत्साह बढ़ाया था ।

इसके विपरीत ऐसे भी प्रसंग आये जब कठोर होकर डाक्टर साहब को संगठन के नेता के नाते प्रताड़ना भी देनी पड़ी और यह सिखाना पड़ा कि स्वयंसेवक को कैसा व्यवहार नहीं करना चाहिए । नागपुर की ही एक घटना है । वहाँ एक शाखा में एक बार स्वयंसेवकों का आपस में झगड़ा हो गया । यह मामला निर्णय के लिए डाक्टर साहब के पास आया । डाक्टर साहब की सीख थी कि स्वयंसेवकों को आपस में प्रेम से रहना चाहिए । जो कुछ हुआ था, वह बड़ा अनुचित था । एक दिन डाक्टर साहब स्वयं उस शाखा पर गये । सब स्वयंसेवकों को उन्होंने इकट्ठा किया और बड़े भावपूर्ण शब्दों में समझाया कि संघ का आधार आपस का स्नेहभाव है । उन्होंने कहा कि अपने ही स्वयंसेवक बंधु पर जिन्होंने हाथ उठाया है उन्हें कुछ न कुछ दण्ड तो मिलना ही चाहिए । और उन्होंने उनको कुछ दिन तक शाखा न आने का दण्ड सुनाया, किन्तु साथ ही यह सुविधा दी कि वे डाक्टर साहब के घर आ सकते हैं । जिन्हें दण्ड मिला था, उनकी आँखों से आँसू बह रहे थे; किन्तु तब डाक्टर साहब का हृदय कठोर हो गया था । पर यह प्रसंग सभी के लिए अविस्मरणीय शिक्षा देने वाला सिद्ध हुआ ।

दूसरी कोई संस्था होती तो जिसे दण्ड मिला वह शायद उस संस्था की बाद में सूरत भी न देखता । किन्तु उस दिन जिन तरुणों को दण्ड मिला था वे इस बात से दुःखी थे कि उन्हें कुछ दिन शाखा के आनंद से दूर रहना पड़ेगा । वे घुटते रहे और जिस दिन दण्ड समाप्त हुआ उस दिन पुनः संघ-स्थान पर आ उपस्थित हुए । उनमें से एक ने तो आगे चलकर प्रान्त प्रचारक के रूप में बढ़िया काम भी किया । नागपुर में ऐसा अवसर फिर कभी नहीं आया और डाक्टर साहब भी इस घटना के सम्बन्ध में आगे कभी नहीं बोले । किन्तु उसका अप्रत्यक्ष उल्लेख करते हुए एक भाषण में उन्होंने कहा था कि "मान लो संगठन में गलती से अपने मित्र को दोषी ठहराया गया ; तो भी उसका पक्ष मत लो । यदि ऐसा प्रश्न खड़ा हो कि संघ-प्रेम बड़ा या मित्र अथवा कुटुंब का प्रेम ? तो उसका एक ही उत्तर चाहिए– संघ प्रथम, मित्र या कुटुंब बाद में । यदि संघ के लिए अपने सुख-दुःख व मान-अपमान की बातें एक ओर रखनी पड़ें तो खुशी से रख देनी चाहिए । किसी भी बात के लिए संघ में अपना अलग गुट मत बनाओ । समूचा संगठन अपना है । संघ के लिए ही हमें जीना है और संघ के लिए ही मरना है, यही बात ध्यान में रखकर हमें व्यवहार करना चाहिए ।"

अजातशत्रु

डाक्टर साहब का चरित्र निष्कलंक था । उनके विरोधी भी उनके चरित्र पर कोई छींटाकशी नहीं कर सकते थे । उनका इस बात पर बड़ा जोर रहता था कि कार्यकर्ता का चरित्र बिल्कुल निर्मल होना चाहिए । चरित्र के बारे में उन्होंने कभी ढिलाई नहीं बरती । व्यक्तियों में राष्ट्रीय चरित्र का निर्माण उनके जीवन का प्रथम कार्य था । किन्तु मनुष्य इसकी सीख किसी के शब्दों से नहीं, वरन् उसके चरित्र को देखकर लेता है । इस निमित्त डाक्टर साहब का चलता-फिरता उदाहरण स्वयंसेवकों के सामने विद्यमान

था। उनके नेतृत्व की विशेषता यह थी कि जितने उनके निकट जाओ, उतने ही वे महान लगते थे। परिणामतः उनका आकर्षण बढ़ता जाता था। एक लुभाने वाली मधुरता उनके सहवास में थी। साथ ही, उनमें न तो बड़प्पन की भावना थी और न ही अनावश्यक शिष्टाचार।

सन् १९३९ में हिन्दु युवक परिषद् के लिए वे पूना गये थे। सम्मेलन में पहुँचने से पूर्व चायपान आदि के लिए वे कुछ समय आचार्य अत्रे के यहाँ रुके थे। इस सम्बन्ध में आचार्य अत्रे ने बाद में लिखा कि डाक्टर साहब सरीखा नेता उनके घर आने वाला है, इस बात का पहले उनके मन पर बड़ा दबाव था। पर जब वे प्रत्यक्ष आये, तो उनका बोलना-चालना देखकर वह दबाव एकदम दूर हो गया और ऐसा लगा मानो कुटुंब के ही कोई बड़े व्यक्ति घर में घूम-फिर रहे हैं। अपनी सादगी, प्रसन्नता, स्नेहशीलता और सहज रूप से घुलमिल जाने की कुशलता के कारण डाक्टर साहब कहीं भी अनचाहे नहीं हुए। स्वयंसेवकों में भी ये गुण वे देखना चाहते थे।

स्वभाव भी बदल डाला

वे स्वयंसेवकों से एक और अपेक्षा किया करते थे, जिसका उन्होंने स्वयं उदाहरण प्रस्तुत किया था। प्रत्येक व्यक्ति का अपना एक स्वभाव होता है और माना जाता है कि वह बदला नहीं जा सकता– "स्वभावो दुरतिक्रमः"। डाक्टर साहब मूलतः गरम स्वभाव के थे। संघ-स्थापना के पहले उनके भाषण अत्यन्त उग्र हुआ करते थे। किन्तु जब उन्होंने संगठन अर्थात् लोगों को स्नेहसूत्र में गूँथने का काम हाथ में लिया तो उस कार्य के अनुरूप उन्होंने अपने स्वभाव को पूरी तरह बदल डाला। इस बात पर उन्होंने विशेष ध्यान दिया कि अपने स्वभाव-दोष के कारण संघ की कोई हानि न हो और नये-नये लोग जुड़ते रह सकें। ध्येय की साधना के लिए उग्रता को बाधक मानकर उन्होंने अपना स्वभाव अत्यन्त नरम और सहनशील बना लिया। उनकी आँखों से बरसनेवाले स्नेहामृत का अनुभव स्वयंसेवकों को हुआ करता था। ऐसे लोग होते हैं जो कहा करते हैं कि "मैं जैसा हूँ, वैसा ही मेरा उपयोग कर लो।" किन्तु डाक्टर साहब को संघ में यह भाषा बिल्कुल नहीं भाती थी। वे स्वयंसेवकों से ऐसी तत्परता की अपेक्षा किया करते थे कि संघ के लिए जैसी आवश्यकता है, वैसा ही मैं बनूंगा; उसके लिए अपने स्वभाव में आवश्यक परिवर्तन लाऊंगा।"

डाक्टर साहब ने राष्ट्रकार्य हेतु जीवन बिताने का निश्चय किया था और तय किया था कि अपना कोई निजी घरबार खड़ा नहीं करेंगे। फिर भी डाक्टरी की परीक्षा उन्होंने दी। प्रश्न उठता है कि यदि व्यवसाय या घरबार करना ही नहीं था तो डाक्टर की पदवी प्राप्त करने के लिए उन्होंने इतनी उठापटक क्यों की? इसका उत्तर यह है कि समाज में पदवी की भी एक प्रतिष्ठा होती है। उत्तम रीति से डाक्टरी जैसी कोई महत्त्वपूर्ण परीक्षा उत्तीर्ण कर खूब कमाने की योग्यता जिसने पा ली है, उसी के त्याग की कीमत हुआ करती है। ऐसे लोगों की कोई यह कहकर खिल्ली नहीं उड़ा सकता कि और कुछ नहीं कर पाये, इसलिए देश-कार्य करने लगे।

करो जीवन का अर्पण

संघ-कार्य के लिए घरबार छोड़कर जाने की इच्छा रखने वाले युवकों को इसीलिए उनकी सलाह रहा करती थी कि जितना पढ़ सकते हो, उतना पढ़ो; गुणों को जितना बढ़ा सकते हो, उतना बढ़ाओ और तब स्वयं अपनी इच्छा से अपना जीवन संघ-कार्य में झौंक दो । उनकी इसी नीति के कारण संघ के अग्रणी कार्यकर्ताओं में हम बुद्धिमान, पदवीधारी व प्रतिष्ठासम्पन्न लोगों की भरमार पाते हैं । वे यह भी कहा करते थे कि जिनके लिए संभव है, वे उच्च शिक्षा प्राप्त करने के लिए अन्य प्रान्तों में जायें । सन् १९२८ में भैया जी दाणी और अन्य दो स्वयंसेवक डाक्टर साहब की प्रेरणा से वाराणसी के हिन्दु विश्वविद्यालय में पढ़ने के लिए गये और वहाँ उन्होंने शाखा शुरू की । श्री भाऊराव देवरस की उच्च शिक्षा लखनऊ में हुई । मानना पड़ेगा कि संघ के कार्य और उसके कार्यकर्ताओं के प्रति समाज में आदर का भाव निर्मित करने हेतु डाक्टर साहब की दृष्टि अनोखी थी ।

अनेक स्वयंसेवकों ने विवाह और गृहस्थ जीवन का मोह छोड़कर राष्ट्र के लिए सम्पूर्ण जीवन लगाने की प्रेरणा डाक्टर साहब के जीवन से ही ली थी । डाक्टर साहब के जीवन की जीती-जागती पुस्तक स्वयंसेवकों के सामने एकदम खुली हुई थी । उससे वे सीखते थे कि यदि धधकती ध्येयनिष्ठा हो तो गरीबी, साधनों की कमी, दुष्प्रचार, समाज का विरोध और उदासीनता, असफलता आदि विषम परिस्थितियाँ मार्ग में बाधक नहीं बन सकतीं और आत्मविश्वास एवं निर्भयता के साथ आगे बढ़ा जा सकता है । डाक्टर साहब संघ-कार्य से पूरी तरह एकरूप हो गये थे । वैसी ही एकरूपता कार्यकर्ताओं के जीवन में भी बनती गयी । कार्यकर्ताओं के गुणों का पोषण डाक्टर साहब ने स्वयं के जीवनरस से किया ।

महिलाएँ अपने पैरों पर खड़ी हों

डाक्टर साहब के जीवन की एक महत्त्वपूर्ण घटना का भी यहाँ उल्लेख करना आवश्यक है । हिन्दु युवकों में संघ का बढ़ता हुआ काम देखकर वर्धा की एक महिला कार्यकर्त्री तथा एक स्वयंसेवक की माताजी श्रीमती लक्ष्मीबाई उपाख्य मावशी केलकर को लगा कि स्त्रियों का भी ऐसा संगठन होना चाहिए । उन्होंने श्री अप्पाजी जोशी के माध्यम से सन् १९३६ में डाक्टर साहब से भेंट की । डाक्टर साहब संघ के अन्तर्गत स्त्री-विभाग प्रारभ करने के लिए तो सहमत नहीं हुए, किन्तु उन्होंने उनको हिन्दु महिलाओं का समानान्तर संगठन खड़ा करने की प्रेरणा दी । उस स्त्री-संगठन का नाम 'राष्ट्र-सेविका समिति' निश्चित किया गया । श्रीमती मावशी केलकर ने समिति को शुरू किया और उसका विस्तार भी किया । मावशी जी के दिवंगत होने के बाद पुणे की श्रीमती सरस्वती ताई आपटे इस समिति का संचालन कर रही हैं ।

'मोहि कहाँ विश्राम'

सन् १९२५ में संघ की स्थापना के बाद से उसकी जड़ें जमाने और उसे पाल-पोस कर बड़ा करने के लिए डाक्टर साहब बिना विश्राम लिये लगातार कार्य कर रहे थे ।

उसका उनके शरीर पर प्रभाव होना ही था। उनका शरीर वैसे तो हट्टा-कट्टा था और व्यायाम से उन्होंने उसको और भी अधिक बलिष्ठ बना रखा था। बचपन से ही उनको शारीरिक परिश्रम के कार्य करने का अभ्यास था। कलकत्ते में पढ़ते समय अपने भुजदंड पर घूँसे सहने की शर्त जीतकर उन्होंने अपने बल का परिचय दिया था। उन्होंने अपनी खुराक की भी धाक बैठा रखी थी जो उनके साथ के दो-तीन गरीब मित्रों के लिए वरदान सिद्ध हुई। उस धाक के आधार पर वे भोजनालय से पूरा डब्बा भरकर भोजन अपने कमरे में मँगवा लेते थे, जिसे वे उन मित्रों के साथ मिल-बाँटकर खा लिया करते थे। कारावास के कष्ट भी उन्होंने सहजता के साथ झेले थे। किन्तु कितना भी कसा हुआ शरीर क्यों न हो, परिश्रम, चिन्ता, अनियमित जीवनक्रम व विश्राम के अभाव में वह भला कब तक टिक पाता ?

प्रातःकाल से लेकर रात्रि तक अखंड रूप से मिलना-जुलना, यत्र-तत्र आना-जाना, कार्य-विस्तार की योजना बनाना तथा विभिन्न कार्यक्रमों में व्यस्त रहना उनका नित्य का अभ्यास था। प्रवास तो करना ही पड़ता था, वह भी भागदौड़ का और कष्ट से भरा। एक बार वे सांगली जाने के लिए निकले तो प्रचंड भीड़ के कारण जगह पाने की दौड़धूप में उनकी कमर में लचक आ गयी और आठ दिन उन्हें सांगली में पड़े रहना पड़ा। प्रवास में रात की बैठकों के कारण देर रात तक जागना होता था। साथ में अनेक प्रकार की चिन्ताएँ तो लगी ही रहती थीं। संघ-कार्य की गति बढ़ाने की उनकी व्याकुलता बहुत तीव्र थी। उनके भाषणों और बातचीत में वह प्रकट भी हुआ करती थी। उस समय तक संघ-कार्य का जितना विस्तार हुआ था उससे दूसरे लोग तो बहुत प्रभावित थे, किन्तु डाक्टर साहब को चैन कहाँ ? उनको देश की बदलती परिस्थिति के संदर्भ में कार्य की गति बड़ी धीमी ही लगती थी।

संघ-स्थापना को अभी सात वर्ष ही हुए थे जब सन् १९३२ में डाक्टर साहब गंभीर रूप से बीमार हुए। कुछ समय पहले से उन्हें पीठ-दर्द की शिकायत थी। दो महीने तक नागपुर में ही धन्तोली में डाक्टर हरदास के घर उनके विश्राम की व्यवस्था की गयी। बाद में पहले की भाँति वे फिर से काम में जुट गये। किन्तु १९३४ में पुनः उनका स्वास्थ्य बहुत बिगड़ गया और उन्हें चार महीने धरमपेठ में श्री वैद्य वकील के यहाँ रखा गया। विश्राम का तो नाम ही था। डाक्टर साहब को बिस्तर पर पड़े रहना बिल्कुल नहीं भाता था। उपर्युक्त दोनों बीमारियों के दिनों में भी वे काम में लगे रहे। वे पत्र-व्यवहार करते, भिन्न-भिन्न शाखाओं से आये तरुण व बाल स्वयंसेवकों की टोलियों से उनका मिलना और बातचीत करना चलता रहता था। प्रत्येक से व्यक्तिगत परिचय करने का उनका आग्रह रहता था। अपना कष्ट भूलकर वे उनसे हँसी-विनोद किया करते और उनका उत्साह बढ़ाते। रात की बैठकें खूब जमा करती थीं।

यह विचार उन्हें सर्वथा असहनीय था कि स्वयंसेवकों का उनसे मिलना-जुलना बन्द कर दिया जाय। श्री वैद्य वकील के बंगले पर एक चौकीदार था। एक बार रात को १० बजे एक सज्जन आये और पूछने लगे कि "यहाँ कोई डाक्टर हेडगेवार हैं ?" चौकीदार ने कहा– "यहाँ थर्मामीटर वाला और रोगियों की जाँच करने वाला तो कोई डाक्टर नहीं है। हाँ, बच्चों को हँसाने वाला एक डाक्टर जरूर है। उससे मिलना हो तो उस कमरे में

चले जाइए।" चौकीदार का यह उत्तर बहुत कुछ बता जाता है। ध्येय के साथ एकरूप हुए डाक्टर साहब सरीखे महापुरुषों की दृष्टि में शरीर तो कार्य का साधनमात्र है। इसके अतिरिक्त ऐसे लोगों को अपनी देह से कोई मोहमाया नहीं हुआ करती।

डाक्टर साहब की पीठ का दर्द अन्त तक रहस्य ही बना रहा। उसने उनका पीछा मृत्यु तक नहीं छोड़ा। किन्तु इसके कारण उन्होंने अपने प्रवास और अन्य गतिविधियों में यथासंभव कोई अन्तर नहीं पड़ने दिया। वे अपने कष्ट का दूसरों को पता भी नहीं लगने देते थे और प्रसन्नचित्त घूमते-फिरते थे। प्रतिवर्ष उनसे आराम करने का आग्रह किया जाता था, किन्तु काम के दबाव में आराम हराम हो जाता था। बाद में जब अन्य प्रान्तों में काम बढ़ने लगा, तब तो लम्बी यात्रा करना भी जरूरी हो गया। उन्हें पसीना बहुत निकला करता था, यहाँ तक कि दिन में पाँच-छः बार कपड़े बदलने पड़ते थे। बीमारी भी ऐसी विचित्र कि ठंडा उपचार उन्हें सहन ही नहीं होता था और सब ऋतुओं में गरम कपड़ों की आवश्यकता होती थी। ऐसी स्थिति में उन्होंने चार वर्ष बिताये।

अंत में सन् १९३९ में नागपुर के संघचालक श्री बाबा साहब घटाटे के बहुत आग्रह करने पर नासिक के पास देवलाली में उनके बंगले पर डाक्टर साहब विश्राम के लिए गये। वहाँ उन्हें 'डबल न्यूमोनिया' हो गया और स्वास्थ्य बहुत बिगड़ गया। श्री गुरुजी अर्थात् श्री माधवराव सदाशिवराव गोलवलकर द्वारा की गयी दिन-रात की सेवा-सुश्रूषा, डाक्टरों द्वारा जिम्मेदारीपूर्वक किये गये पराकाष्ठा के प्रयत्नों और सब लोगों की सदिच्छा के कारण इस भीषण बीमारी में से वे सँभल गये और अच्छे होकर नागपुर वापस आ गये। किन्तु तबियत सुधरने का यह समाधान बहुत दिनों तक टिक नहीं सका।

"मौका हाथ से जा रहा है"

डाक्टर साहब के मन में इन दिनों एक तूफान चल रहा था। १९३९ में दूसरा विश्वयुद्ध भड़क उठा था और भारत की गुलामी का जुआ उखाड़ फैंकने के लिए एक सुनहरा अवसर सामने दिखाई दे रहा था। किन्तु इस मौके का लाभ उठाने के लिए आवश्यक संगठित राष्ट्रीय शक्ति थी कहाँ? ऐसी शक्ति खड़ी करने के लिए डाक्टर साहब ने संघ-स्थापना से लेकर आज तक बिना रुके काम किया था। उसमें उन्हें सफलता भी मिल रही थी। किन्तु आवश्यकता को देखते हुए यह शक्ति कम पड़ती थी। यह बात डाक्टर साहब के मन को बहुत कष्ट दिया करती थी। तबियत में सुधार के लिए, मित्रों के आग्रह से वे बिहार के राजगिरि नामक स्थान पर उपचार के लिए गये। वहाँ गरम पानी के प्राकृतिक झरने हैं और अनेकों का अनुभव था कि उनमें स्नान करने से दर्द में कमी होती है। डाक्टर साहब लगभग दो महीने वहाँ रहे। थोड़ा लाभ भी हुआ। किन्तु अप्पा जी जोशी सरीखे ज्येष्ठ कार्यकर्ता बताया करते थे कि इस अवधि में उनका मन बड़ा बेचैन रहता था।

एक दिन दोपहर के समय डाक्टर साहब बिस्तर पर पड़े थे। नींद नहीं आ रही थी। मन की बेचैनी चल रही थी। उस समय जब थोड़ी सी आँख लगी, तब उनके मुँह से बर्राने जैसे शब्द अप्पाजी जोशी ने सुने। उनींदी अवस्था में वे कह रहे थे—"देखो, देखो,

१९४० का साल आ गया। हम कुछ नहीं कर पाये। हम अभी भी पराधीन ही हैं।" इस विचार से कि प्राप्त हुए अवसर का स्वतंत्रता-प्राप्ति के लिए कुछ उपयोग किया जा सके, उन्होंने कार्यवृद्धि की एक समयबद्ध योजना राजगिरि निवास के समय निश्चित की। डाक्टर साहब ने यह लक्ष्य निश्चित किया था कि तीन वर्षों में नगरों में जनसंख्या का तीन प्रतिशत और गाँवों में एक प्रतिशत पूर्ण गणवेशधारी तरुण स्वयंसेवक तैयार किये जाने चाहिए। उनका यह निश्चित मत था कि इस मात्रा में संघ के लोगों द्वारा जो शक्ति खड़ी होगी, उसके आधार पर देश में परिवर्तन लाना संभव हो जायेगा। उन दिनों वे अपने भाषणों में "याचि देही याचि डोला" याने इसी देह में इन्हीं आँखों से देश का बदलता हुआ चित्र देखने की बात कहा करते थे। इसी आकांक्षा को स्वयंसेवकों में जागरित करने का उनका प्रयत्न रहता था।

किसे पता था अब नहीं मिलेंगे ?

सन् १९४० का अप्रेल का महीना आया। डाक्टर साहब को पुणे के प्रशिक्षण-वर्ग की चिन्ता लगी। वे नागपुर आये और तुरन्त पुणे रवाना हो गये। तबियत नरम ही थी, फिर भी उन्होंने पुणे-वर्ग के सारे कार्यक्रम अत्यन्त उत्साह के साथ निपटाये। सब स्वयंसेवकों से व्यक्तिशः परिचय किया। पीठ का दर्द कष्ट दे ही रहा था। भरी गर्मी में भी उन्हें ठंड सहन नहीं होती थी। इसलिए ऊनी कपड़े सदा पहने रहना पड़ता था। फिर भी पुणे के पन्द्रह दिनों के कार्यक्रम वे सम्पन्न करते जा रहे थे। उन्होंने किसी को अपनी अस्वस्थता का पता नहीं लगने दिया। उनके चार भाषण हुए और अंत में आयोजित प्रान्तीय बैठक के समारोप में वे कुर्सी पर बैठे-बैठे ही दो घंटे बोले। उनका प्रत्येक भाषण नगरीय क्षेत्रों में तीन प्रतिशत और ग्रामीण क्षेत्रों में एक प्रतिशत स्वयंसेवक निर्माण करने का लक्ष्य हर हालत में तीन वर्ष में पूरा करने की आकुलता से भरा और उत्साह-निर्माण करने वाला था। ये भाषण इस विश्वास से परिपूर्ण थे कि संघ-कार्य ही देश को तारेगा। पुणे का शिक्षा-वर्ग समाप्त हुआ और स्वयंसेवकों से उन्होंने प्रेमपूर्वक विदा ली। किन्तु उन्हें विदा देते समय कौन जानता था कि यह उनकी अंतिम विदाई है ?

डाक्टर साहब नागपुर आये। संघ-शिक्षा वर्ग में ही ठहरे। किन्तु उसी दिन उन्हें तेज ज्वर चढ़ा और वे घर ले आये गये। ऐसा पहले कभी नहीं हुआ था कि संघ-शिक्षा वर्ग के चलते हुए डाक्टर साहब घर में बिस्तर पर पड़े रहे हों। डाक्टर साहब बेचैन हो गये। ज्वर छोड़ नहीं रहा था। उधर संघ-शिक्षा वर्ग की अवधि समाप्त होने को आयी। डाक्टर साहब इस चिन्ता में घुले जा रहे थे कि भारत के प्रत्येक प्रान्त से इतनी अच्छी संख्या में शिक्षार्थी आये हैं, किन्तु वे उनसे मिल-बोल नहीं पा रहे हैं। दूसरी ओर द्वितीय विश्व-युद्ध के समाचार और पाकिस्तान की माँग करने के मुस्लिम लीग के प्रस्ताव जैसी बातें उनकी बेचैनी को बढ़ाने वाली ही थीं। तत्सम्बन्धी विचार उनके मन में उमड़ते रहते थे। ऐसे समय में, जब एक ओर वे गंभीर बीमारी से ग्रस्त थे और दूसरी ओर मानसिक दृष्टि से भी अत्यन्त उद्वेलित थे, डा० श्यामाप्रसाद मुखर्जी उनसे मिलने आये। उनका प्रस्ताव था कि तत्कालीन परिस्थिति का मुकाबला करने के लिए संघ को राजनीति में उतर आना चाहिए। डाक्टर साहब ने उनका वह प्रस्ताव स्वीकार नहीं किया।

श्री मधुकर दत्तात्रेय (बालासाहब) देवरस
(वर्तमान सरसंघचालक)

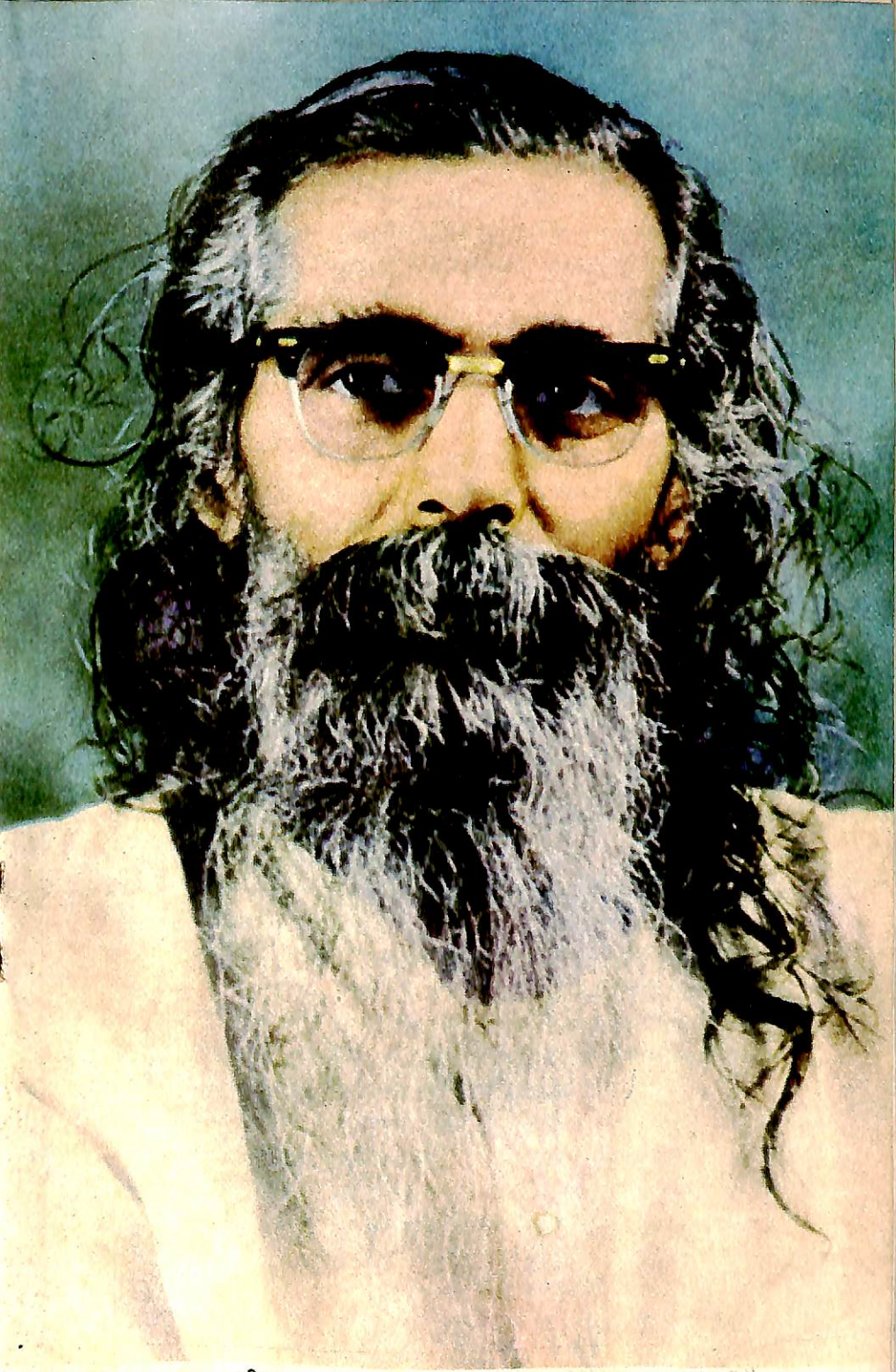

श्री माधवराव सदाशिवराव गोलवलकर (श्री गुरुजी)
(पूर्व-सरसंघचालक)

इतनी गंभीर बीमारी होते हुए भी वे शिक्षा-वर्ग के सार्वजनिक समारोप के कार्यक्रम में जाने के लिए अति व्याकुल थे। किन्तु डाक्टर अनुमति नहीं दे रहे थे। आखिरकार यह तय हुआ कि ९ जून को प्रातःकाल विदाई-समारोह में वे कुछ देर के लिए बोलें। पता नहीं उन्होंने उस भाषण के लिए कहाँ से बल जुटाया। किन्तु वह अविस्मरणीय भाषण सबके हृदयों को छूने वाला था। उन्होंने संघ-कार्य को ही जीवन का प्रमुख कार्य मानने के लिए सबका आह्वान किया था। सब स्वयंसेवकों के मन भर आये। जब डाक्टर साहब ने कहा कि "मैं आप लोगों की कुछ भी सेवा न कर सका" तो सबकी आँखें भर आयीं।

धर दीन्हीं चदरिया

इसके केवल बारह दिनों के बाद डाक्टर साहब की आत्मा ने अपना देह रूपी चोला उतार फैंका। उसके पहले उनके उपचार में कोई कसर बाकी नहीं छोड़ी गयी थी। किन्तु पीठ के दर्द का कारण समझ में नहीं आ रहा था। अंत में निश्चय हुआ कि 'लम्बर पंक्चर' किया जाय। ऐसी जानकारी मिलने पर डाक्टर साहब ने श्री गुरुजी को पास बुलाकर सबके सामने उनसे कहा कि "अब संगठन का भार आपके कंधों पर है।" वे समझ गये थे कि अब उनके जीवन के दिन पूरे हो रहे हैं, इसलिए इस प्रकार आगे की व्यवस्था करके वे महायात्रा के लिए तैयार हो गये। आखिरकार उस असहनीय वेदना और सीमा के बाहर जाते ज्वर के सामने डाक्टर साहब को हाथ टेकने पड़े। २१ जून को प्रातःकाल ९ बजकर २७ मिनट पर डाक्टर साहब की आत्मा अनंत आकाश में विलीन हो गयी। वह ५०४२ युगाब्द अर्थात् ईसवी सन् १९४० का दिन था।

यह समाचार बिजली की गति से चारों ओर फैल गया। बाबा साहेब घटाटे के बंगले के सामने स्वयंसेवकों और नागरिकों के झुंड जमा होने लगे। ग्राम-ग्राम से कार्यकर्ता और स्वयंसेवक पहुँचने लगे। उनकी अन्तिम यात्रा में सम्मिलत शोकाकुल समाज सड़क पर एक मील दूर तक फैला हुआ था। अनेकों की आँखों से अश्रुधारा बह रही थी। जिसने अपना कोई घरबार नहीं बसाया, उस राष्ट्रसमर्पित महापुरुष के अंतिम दर्शनों के लिए भीड़ उमड़ रही थी। साथ में जब वर्षा की फुहारें भी पड़ीं तो ऐसा लगा मानो इन्द्रदेव भी लोगों के दुःख में सम्मिलत हो गये हैं। डाक्टर साहब ने संघ के लिए रेशिमबाग में एक जगह खरीदी थी। वहीं उनका अन्तिम संस्कार किया गया। उसी तपोभूमि पर आज उनका प्रेरणास्पद स्मृति-मंदिर खड़ा है।

अपनी देह को चन्दन के समान घिसकर उन्होंने मातृभूमि के चरणों में अर्पित कर दिया। अपनी आयु के ५२वें वर्ष तथा संघ-स्थापना के १५वें वर्ष में वे महाप्रस्थान कर गये। मौत का बुलावा तो सबको आता ही है, किन्तु डाक्टर साहब मरकर भी कीर्तिरूप में अमर हैं। उन्होंने अपने जीवनकाल में ध्येयनिष्ठ कार्यकर्ताओं की एक सुदृढ़ श्रृंखला निर्मित की और श्री गुरुजी सरीखे विलक्षण व्यक्ति के कंधों पर संघ की जिम्मेदारी सौंपकर वे चले गये। उस बात को आज ४८ साल हो चुके हैं। उनके द्वारा प्रज्वलित की गयी ध्येय-ज्योति आज भी पूर्ण प्रखरता से जल रही है। काल और परिस्थितियाँ उसकी गति को न मन्द कर सकी हैं और न ही खंडित। एक प्रकार से संघ के रूप में डाक्टर साहब आज भी हमारे बीच विद्यमान हैं और वही है उनकी कीर्ति-पताका।

बीज बना वृक्ष

१९४७ में देश की परिस्थिति में एक गुणात्मक परिवर्तन आया। दासता के बन्धन टूट गये थे और राष्ट्र के पुनर्निर्माण की ओर ध्यान देने का काल प्रारंभ हो रहा था। राष्ट्र-जीवन के सभी क्षेत्रों को सुधारने और सँवारने की चुनौती सामने खड़ी थी। संघ का कार्य देश भर में फैल ही चुका था। कार्यकर्ता पूरे जोश के साथ एक के बाद दूसरे क्षेत्र में उतरते गये। इस समय वे राष्ट्रीय विचारधारा की ओर समाज को मोड़ने के कार्य में पूरे जोर से लग चुके हैं। हिन्दु संस्कृति पर श्रद्धा रखने वाला समाजपुरुष स्वाभिमान के साथ खड़ा रहने के लिए हाथ-पैर हिलाने लगा है। देश के बीस हजार गाँवों और नगरों में चलने वाली संघ-शाखाएँ तथा उनके लाखों स्वयंसेवक डाक्टर साहब के निधन के ४८ वर्ष बाद भी उनकी कल्पना के अनुसार हिन्दु समाज को शक्तिशाली और समर्थ बनाने में जुटे हुए हैं। क्या इस प्रकार अपने ध्येय-पथ से न हटते हुए इतने समय तक लगातार बढ़ने वाला कोई और जीवमान संगठन दिखाई देता है? यह डाक्टर साहब के कर्तृत्व और उनकी अलौकिक संगठनकुशलता का सबसे बड़ा प्रमाण है।

इतिहास के पन्ने पलटकर देखने पर आज लगता है कि डाक्टर साहब द्वारा संघ की स्थापना आधुनिक हिन्दुस्थान के इतिहास को मोड़ देने वाली एक महान् घटना थी। संघ-स्थापना के समय और उसके पूर्व भी हिन्दुत्व का विचार अनेकों के मुख से बोला जाता था। हिन्दु राष्ट्र की कल्पना का तात्त्विक चिंतन भी हुआ था। किन्तु साकार रूप में हिन्दुओं की संगठित शक्ति खड़ी करने का मार्ग तब तक किसी को नहीं सूझा था। इस विचार को स्पष्ट रूप में चरितार्थ करने का उपाय प्रस्तुत किया डाक्टर हेडगेवार ने। हिन्दुओं में दिखाई देने वाली विविधता में आन्तरिक एकता का वास्तविक धागा डाक्टर साहब ने पहचान लिया। उसे पकड़कर समाज को स्नेह की डोर में गूँथने का काम उन्होंने प्रारंभ कर दिया। यह कार्य प्रतिक्रिया के रूप में नहीं प्रारंभ किया गया था। उन्हें सच्ची राष्ट्रीयता का साक्षात्कार हो चुका था। उसे साकार करने के सार्थक पग उन्होंने उठाये।

बात नहीं, काम करो

डाक्टर साहब ने न तो हिन्दु तत्त्वज्ञान की पाण्डित्यपूर्ण चर्चा की और न ही वे 'हिन्दु' शब्द की व्याख्या के चक्कर में पड़े। करोड़ों की जनसंख्या वाला हिन्दु समाज आँखों के सामने प्रत्यक्ष दिखाई देता था। उनका सुस्पष्ट आह्वान था कि हम हिन्दु समाज को इस भावना के आधार पर एकत्र लाने का प्रयत्न करें कि यही इस राष्ट्र का कर्ता-धर्ता है। किसी ने यदि पूछा भी कि "आप हिन्दु की क्या परिभाषा करते हैं?" तो वे उत्तर दिया करते थे कि "मैं कोई पंडित नहीं हूँ। परिभाषा करना पंडितों और विद्वानों का काम है। जो समाज साक्षात् दिखाई दे रहा है उसके घटकों को संगठित करने का कार्य संघ ने हाथ में लिया है।" वे समझाकर बताया करते थे कि संगठन कैसे करना चाहिए। बोलते समय भाषा बिल्कुल सीधी और सरल तथा हृदय को छू लेने वाली हो। उनका मंत्र था— "केल्याने होत आहे रे, आधी केलेच पाहिजे" (कोई भी कार्य करने से होता है, इसलिए पहले करना चाहिए)। इस मंत्र के अनुसार संगठन खड़ा करने के लिए उन्होंने अखंड

परिश्रम किया। हिन्दु राष्ट्र के विचार का होने वाला विरोध, प्रसिद्धि से दूर रहने की संघ की कार्यपद्धति के कारण उत्पन्न होने वाले भ्रम व शंकाएँ, आन्दोलनों की बार-बार किन्तु थोड़े समय के लिए उठने वाली लहरें और हिन्दु समाज की उदासीन अथवा आत्मविस्मृत अवस्था आदि किसी भी अड़चन के आग वे झुके नहीं। गजब के संयम, आत्मीयता, नम्रता व आत्मविश्वास के साथ तथा अपने 'अहम्' को पूरी तरह भूलकर वे अपने विचारों का प्रचार करते रहे, तरुणों का जीवन गढ़ते रहे।

जित देखों तित लाल

इसकी कल्पना करना भी कठिन है कि डाक्टर साहब ने हिन्दुत्व का असंदिग्ध रूप से पोषण करने वाला, हिन्दुधर्म और हिन्दु संस्कृति की रक्षा का व्रत लेकर चलने वाला एक ऐसासंगठन यदि न खड़ा किया होता, जो राष्ट्रीय चारित्र्य पर बल देता है, तो गत चालीस वर्षों में क्या हुआ होता। आज संघ के विचारों की लहर समाज में सब दूर फैल रही है। राष्ट्रहितकारी कार्यों के समर्थन में आवाज उठाने वाला हिन्दु मानस देश भर में कम-अधिक परिमाण में दिखाई देने लगा है। संघ की राष्ट्र-कल्पना और कार्यपद्धति की प्रारंभ में खिल्ली उड़ायी गयी थी, किन्तु आज उसको ही प्रतिष्ठा प्राप्त हो रही है। अनेक नेताओं, दलों व संगठनों को इस बात से ईर्ष्या होती है कि उनके पास संघ जैसा संस्कारित और अनुशासित मनुष्य-बल नहीं है। संघ की कार्यपद्धति के बाहरी रूप की नकल करने का भी अनेकों ने प्रयत्न किया, किन्तु वे सफल नहीं हो सके।

'हिन्दु' शब्द के संबंध में जो संकोच की भावना संघ के प्रारंभिक दिनों में सब जगह दिखाई देती थी, वह अब प्रायः समाप्त हो चुकी है। उसके स्थान पर अभिमान और गौरव की भावना दिखाई दे रही है। आज ऐसा कहने वाले संगठन स्थान-स्थान पर खड़े हो गये हैं कि "हम हिन्दु हैं और हिन्दु समाज की रक्षा करने के लिए कमर कसकर खड़े हुए हैं।" कुछ संगठन तो चुनाव की राजनीति में भी इसका लाभ उठा रहे हैं। परिवर्तन आँखों को स्पष्ट दिखाई दे रहा है। किन्तु इसका कारण खोजना हो तो १९२५ में जाना पड़ेगा जब डाक्टर साहब ने राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ का बीजारोपण किया था और जिसे बाद में १५ वर्षों तक उन्होंने अपने खून-पसीने से सींचा था। यह कहना कोई अतिशयोक्ति नहीं होगी कि संघ भारत में राष्ट्रीय नवोत्थान का अग्रदूत सिद्ध हुआ है।

मृत्युंजय भारत

हिन्दुस्थान के इतिहास पर यदि एक सरसरी दृष्टि डालें तो दिखाई देगा कि यहाँ उत्थान और पतन का एक चक्र चलता आया है। दुनिया में अनेक राष्ट्र ऐसे हुए हैं जिनका अपनी संस्कृति सहित पतन हो गया और वे फिर अपनी उसी विशेषता को लेकर खड़े नहीं हो पाये। भारत ही एक ऐसा देश है जो मानो अमरता का वरदान लेकर पैदा हुआ है। वह जब भी गिरा, फिर से उठ खड़ा हुआ है। डाक्टर साहब ने इसका रहस्य पहचाना। और वह रहस्य यह है कि किसी भी राष्ट्र को स्वतंत्र और वैभवशाली बनाना हो तो उसके धर्म और संस्कृति की रक्षा करनी होगी। संघ की प्रतिज्ञा और प्रार्थना में उन्होंने यह बात स्पष्ट रूप से रखी। एक ओर प्रतिज्ञा में कहा गया– "अपने पवित्र

हिन्दु धर्म, हिन्दु संस्कृति और हिन्दु समाज का संरक्षण कर हिन्दु राष्ट्र को स्वतंत्र करने के लिए", तो प्रार्थना में संकल्प किया गया– "विधायास्य धर्मस्य संरक्षणम्" तथा "परं वैभवं नेतुमेतत् स्वराष्ट्रम्"। इससे निर्विवाद रूप से स्पष्ट हो जाता है कि डाक्टर साहब के चिन्तन में धर्म और संस्कृति की रक्षा को पहला स्थान मिला था। यह स्वाभाविक ही था, क्योंकि यह उनके स्वभाव से मेल खाने वाली बात थी। स्वामी विवेकानन्द ने भी तो बार-बार असंदिग्ध शब्दों में घोषित किया था कि धर्म भारत का प्राण है। इस देश में उत्थान के प्रयत्न सदैव धर्म की रक्षा के रूप में हुए। महान् आध्यात्मिक महापुरुषों ने जब धर्म की ग्लानि दूर की, तभी इस देश ने वैभव के दिन देखे। इस बात के क्या लक्षण हो सकते हैं कि भारत हिन्दु राष्ट्र है? यही तो कि यही वह राष्ट्र है जिसमें हिन्दु धर्म और हिन्दु संस्कृति के जीवन-आदर्शों का आविष्कार हुआ। यही तो वह राष्ट्र है जो उन जीवनादर्शों की रक्षा और अभिवृद्धि के लिए कमर कसकर खड़ा होता रहा है, और यही वह देश है जिसमें हिन्दु तत्त्वज्ञान को व्यवहार में उतारने वाला समाज रहता रहा है। ऐसे समाज को ही बलवान बनाने से यह राष्ट्र मृत्युंजय बनेगा।

देश-धर्म का नाता है

डाक्टर साहब ने हिन्दुस्थान के उत्थान और पतन के कारणों का गहराई से अध्ययन किया था। यह बात अनेक उदाहरणों से उनके ध्यान में आयी थी कि इस देश में पहले आध्यात्मिक जागृति हुई और फिर ऐहिक जीवन में सम्पन्नता आयी। भगवान बुद्ध ने धर्म-जागरण किया, उसके बाद अशोक का विशाल साम्राज्य आया। शंकराचार्य ने वैदिक धर्म की विजय-पताका सब ओर फहरायी, तब भारत ने स्वर्णयुग का अनुभव किया। श्रीमन्माधवाचार्य के धर्म-जागरण के आधार पर विजयनगर के समृद्धिशाली साम्राज्य का निर्माण हुआ। संत ज्ञानेश्वर से लेकर समर्थ रामदास तक संतों की परम्परा ने महाराष्ट्र में धर्म-जागरण की लहर पैदा की, जिसके फलस्वरूप देश को छत्रपति शिवाजी महाराज का बेजोड़ नेतृत्व प्राप्त हुआ। उस समय तो सारे देश में ही भक्तिपंथ का ज्वार आया हुआ था। हर प्रान्त में बड़े-बड़े सन्त आगे आये जिन्होंने भक्ति की धारा बहाकर लोगों को इस देश की आध्यात्मिक परम्परा से जोड़े रखा और अनेक पराक्रमी पुरुषों को धर्म की रक्षा हेतु तलवार हाथ में लेने की प्रेरणा दी। गुरु नानकदेव ने पंजाब में अध्यात्म की ज्योति जगायी जिसने अन्तिम पाँच गुरुओं को धर्म की रक्षा के लिए शस्त्र-धारण की प्रेरणा दी। उसके फलस्वरूप, हिन्दु धर्म को नष्ट करने के लिए उद्यत इस्लामी आक्रमणकारियों से हिन्दु समाज ने घनघोर युद्ध किया। उसकी गाथा भारत के इतिहास में असीम त्याग और प्रेरक बलिदान के एक नये अध्याय के रूप में जुड़ चुकी है।

कुछ ही वर्ष पूर्व संघ ने एकात्मता-स्तोत्र प्रसारित किया है। उसमें आध्यात्मिक और रणकुशल दोनों ही प्रकार के प्राचीन व आधुनिक काल के महापुरुषों का स्मरण किया गया है। हिन्दुस्थान का इतिहास बताता है कि ये दोनों ही परम्पराएँ एक दूसरे की पूरक और पोषक रही हैं। उन्नीसवीं सदी के उत्तरार्ध तक का यही अनुभव रहा है कि कोरी इहलौकिक बात से हिन्दु मानस कभी आकर्षित नहीं हो पाया।

उन्नीसवीं सदी के उत्तरार्ध और बीसवीं सदी के पूर्वार्ध में ऋषि दयानंद, रामकृष्ण

परमहंस, स्वामी विवेकानंद, स्वामी रामतीर्थ, महायोगी अरविन्द व रमण महर्षि सरीखी श्रेष्ठ आध्यात्मिक विभूतियों ने राष्ट्र का यही प्राणस्वर गुँजाया । राष्ट्र में चेतना का जागरण हुआ और राष्ट्रीय स्वतंत्रता का आन्दोलन उठ खड़ा हुआ । 'वंदे मातरम्' उस आन्दोलन का महामंत्र बना ।

संघ-कार्य ईश्वरीय

इसलिए डाक्टर साहब ने देश की समृद्धि और विकास के लिए धर्म और संस्कृति की रक्षा को आवश्यक बताया और इन सबकी सुरक्षा के लिए स्वतंत्रता, संगठन व शक्ति की अनिवार्यता का प्रतिपादन किया । किन्तु वे प्रत्यक्ष रूप से धार्मिक अथवा आध्यात्मिक विवाद में नहीं पड़े । उन्होंने तत्त्वज्ञान की कोई चर्चा नहीं की । मनुष्यों को जोड़ना और उन्हें संगठित करना ही उनका जीवन-कार्य बना । किन्तु इन कार्यों का मूल उद्देश्य ऐसी अनुकूल परिस्थिति का निर्माण करना था जिसमें महापुरुषों द्वारा बताये गये जीवनादर्शों को पूरा किया जा सके । संघ की प्रार्थना, प्रतिज्ञा व डाक्टर साहब के भाषणों में इसके संकेत सर्वत्र मिलते हैं । संघ की प्रतिज्ञा सर्वशक्तिमान् परमेश्वर का स्मरण करके ही ली जाती है । प्रार्थना में भी सर्वशक्तिमान् परमेश्वर का ही शुभाशीर्वाद माँगा गया है । सारे स्वयंसेवक प्रार्थना द्वारा परमेश्वर के सामने यही निश्चय दोहराते हैं कि तेरे ही कार्य के लिए हमने अपनी कमर कसी है– "त्वदीयाय कार्याय बद्धा कटीयम्" । 'अभ्युदय और निःश्रेयस्' अर्थात् इहलौकिक और आध्यात्मिक दोनों ही प्रकार की उन्नतियाँ हिन्दु धर्म में आवश्यक मानी गयी हैं । प्रार्थना में इसी का उल्लेख 'परम वैभव' शब्द के द्वारा हुआ है । डाक्टर साहब के बोलने में बार-बार ये शब्द आते थे कि "अपना कार्य ईश्वरीय है," "संस्कृति ही राष्ट्र की आत्मा है" आदि । उन्होंनें ऐसा कोई भी विचार नहीं रखा जो देश की परम्परा से हटकर हो । इसके विपरीत, जहाँ धर्म-संस्कृति के मूल तत्त्व को भुला दिया गया था, वहाँ उन्होंने उसका स्मरण करा दिया ।

उदाहरणार्थ, गीता में भगवान ने 'संभवामि युगे युगे' का जो वचन दिया है, उसका उल्लेख कर अवतारों की बाट जोहने वालों से वे कहा करते थे– "भगवान अवतार लेते हैं साधुओं की अर्थात् सज्जनों की रक्षा के लिए । पर आज हम लोग क्या सही अर्थों में सज्जन हैं ? ऐसे लोगों को साधु कैसे कहा जा सकता है जिन्हें समाज या राष्ट्र की चिन्ता नहीं, धर्म या संस्कृति का विचार नहीं तथा स्वयं के स्वार्थ को छोड़कर अन्य कोई बात जिन्हें सूझती नहीं ? उनकी गिनती तो दुष्टों में ही की जानी चाहिए । यदि हममें ये दुर्गुण ऐसे ही बने रहें तो भगवान से चाहे कितनी भी दया की भीख क्यों न माँगी जाय, भगवान हमारी सहायता के लिए कभी दौड़कर नहीं आयेंगे । पहले हम राष्ट्र, धर्म व समाज के कल्याण के लिए अपना सब कुछ होम कर देने की तैयारी करें, तभी हम भगवान् की दृष्टि में सचमुच सज्जन बनेंगे और तभी वह हमारे लिए दौड़कर आयेंगे ।" डाक्टर साहब की बातों में अपनी परम्परा के अनुरूप, झकझोरने वाले और कर्तव्य की भावना जगाने वाले विचार प्रकट हुआ करते थे । वे सदा जोर देकर कहा करते थे कि "संघ को नया कुछ नहीं करना है ।" उन्होंने यह अहंकार संघ में कभी उत्पन्न नहीं होने दिया कि संघ कुछ नया

कर रहा है, और स्वयंसेवकों का ध्यान धर्म एवं संस्कृति की रक्षा करने के महान् उद्देश्य से कभी हटने नहीं दिया ।

किंतु चाहिए चरित्रबल

उन्नीसवीं शताब्दी के उत्तरार्ध और बीसवीं शताब्दी के पूर्वार्ध में इस देश में एक से एक बढ़कर श्रेष्ठ कर्तृत्ववान महापुरुष विद्यमान थे । अध्यात्म, धर्म, संस्कृति, शिक्षा, समाज–सुधार, राजनीति, प्रशासन, विज्ञान आदि भिन्न-भिन्न क्षेत्रों में उत्पन्न हुए चोटी के महापुरषों की मालिका हमें आश्चर्यचकित कर देती है । डाक्टर साहब का जन्म और विकास ऐसे राष्ट्रीय वातावरण में हुआ था । चारित्र्य और जीवन के आदर्शों को प्राणों से भी अधिक महत्त्व देने वाले अनेक श्रेष्ठ लोग उनके सामने थे । ये सभी लोग राष्ट्र की उन्नति के लिए अपने-अपने ढंग से प्रयत्न कर रहे थे । इसी समय विवेकानंद जी ने भी गर्जना की थी– "दुनिया को देखो; पश्चिम के लोगों की संगठन-कुशलता, कार्य करने का उत्साह और अनुशासन जरूर सीखो; किन्तु अपने राष्ट्र के प्राणरूप अध्यात्म और धर्म के आधार को सुरक्षित रखो । अन्यथा, भोगप्रधान पश्चिमी जीवन की नकल करने के फेर में अपने देश का घोर चारित्रिक पतन हो जायेगा ।"

डाक्टर साहब ने धर्म और संस्कृति का महत्त्व बनाये रखा और स्वयंसेवकों के मनों पर निष्कलंक चारित्र्य की उपादेयता वे सदैव अंकित करते रहे । उत्कट देशभक्ति, स्वाभिमान, लगन, नम्रता, सौजन्य, सेवा-भावना, स्नेहशीलता, देशबांधवों के सुख-दुःख के साथ समरस होने की वृत्ति, सहनशीलता, निर्मल चरित्र आदि गुणों के कारण डाक्टर साहब का व्यक्तित्व प्रभावी व संस्कार देने में समर्थ बना था । अन्य अनेक साधन कम या अधिक भले ही रहे हों, डाक्टर साहब अपनी इस गुणसम्पदा द्वारा सर्वत्र अपने लिए अनुकूलता निर्मित कर लेते थे ।

नागपुर के सार्वजनिक जीवन में वे प्रायः डा० मुंजे का साथ दिया करते थे । डाक्टर मुंजे के विरोधी भी स्वीकार करते थे कि डाक्टर हेडगेवार का प्रभाव कम करने के लिए उनके चरित्र पर एक भी छींटा नहीं उछाला जा सकता । इस संबंध में डाक्टर मुंजे के कट्टर विरोधी बैरिस्टर अभ्यंकर का एक संस्मरण उल्लेखनीय है । एक बार किसी की सहायता के लिए डाक्टर साहब ने बैरिस्टर अभ्यंकर से कुछ रुपये उधार लिये और उसके लिए 'प्रोमिसरी नोट' याने वचन-पत्र लिखकर देने की बात कही । इस पर बैरिस्टर साहब ने कहा– "मैं अभी पागल नहीं हुआ हूँ कि डाक्टर हेडगेवार से प्रोमिसरी नोट लिखाने की बात सोचूँ ।" इतना विश्वास था बैरिस्टर अभ्यंकर का डाक्टर साहब के प्रति ।

डाक्टर साहब का इस बात पर बहुत जोर रहता था कि स्वयंसेवक का चरित्र इतना निष्कलंक रहना चाहिए कि सार्वजनिक जीवन में उनसे मतभेद रखने वाले लोग भी अंगुली न उठा सकें । चरित्र-बल पर उनका आग्रह इस देश के परम्परागत आदर्श और जीवन की ओर देखने की हिन्दु दृष्टि के कारण ही था । इस कारण अन्य संस्थाओं में होने वाले विवाद, छोटे-मोटे झगड़े, मन के छोटेपन के कारण उत्पन्न होने वाली अस्वस्थ स्पर्धा तथा ईर्ष्या आदि विकृतियाँ संघ में कभी नहीं उभरीं । प्रायः देखा जाता है कि किसी संगठन के बुरे दिन आने पर उस संगठन के लोगों की निष्ठाएँ डिग जाती हैं । यद्यपि संघ

को भी सम-विषम सभी प्रकार की परिस्थितियों में से गुजरना पड़ा है, फिर भी कार्यकर्ताओं का परस्पर प्रेम, विश्वास व ध्येय के प्रति गहरी निष्ठा आदि संगठन के आधारभूत गुण तनिक भी दुर्बल नहीं हुए ।

'मेरे बाद कौन ?'

डाक्टर साहब ने संघ-कार्य के सूत्र श्री गुरुजी सरीखे युवा सहकारी के हाथों सौंपे, जिन्होंने सार्वजनिक जीवन में तो भाग नहीं लिया था किन्तु उनके जीवन को अध्यात्म का पक्का आधार प्राप्त हुआ था । डाक्टर साहब के अनेक मित्रों व तत्कालीन सार्वजनिक जीवन के ज्येष्ठ कार्यकर्ताओं को उस समय उनके उस चयन पर आश्चर्य हुआ था । किन्तु संघ के सभी स्वयंसेवकों ने अत्यन्त सहजता के साथ अपने नये सरसंघचालक को स्वीकार किया । डाक्टर साहब ने अपने स्वास्थ्य की स्थिति देखकर संगठन की भावी व्यवस्था का विचार १९३९ में ही कर लिया था । कुछ सहयोगियों का मत भी उन्होंने लिया था । डाक्टर साहब के अनन्य सहयोगी तथा वर्धा जिला-संघचालक श्री अप्पाजी जोशी कहा करते थे कि डाक्टर साहब के मन में श्री गुरुजी को सरसंघचालक पद की जिम्मेदारी देने का विचार १९३९ में वर्धा जिले के सिंदी नामक स्थान पर हुई महत्त्वपूर्ण बैठक के समय ही प्रायः पक्का हो गया था । वे बताते थे कि सिंदी बैठक के समय एक बार डाक्टर साहब ने उनसे पूछा था– "भावी सरसंघचालक के नाते माधवराव जी आपको कैसे लगते हैं ?" अप्पाजी ने श्री गुरुजी के गुणों की प्रशंसा की थी । डाक्टर साहब का श्री गुरुजी के बारे में यह मत अचानक नहीं बना था । वे सन् १९३१ से ही श्री गुरुजी के आचार-विचार को बड़ी बारीक दृष्टि से परख रहे थे ।

यह बात डाक्टर साहब को मालूम थी कि श्री गुरुजी का अध्यात्म की ओर झुकाव है और यह घटना भी उनके सामने ही घटी थी कि किसी को न बताते हुए श्री गुरुजी स्वामी अखण्डानंद जी के सारगाछी स्थित आश्रम में चले गये थे । इसलिए जैसे ही श्री गुरुजी अखण्डानंद जी महाराज की महासमाधि के बाद नागपुर आये, डाक्टर साहब ने उनसे अत्यन्त स्नेहपूर्ण सम्बन्ध बनाकर धीरे-धीरे उन्हें संघ के काम में अधिकाधिक जुटा दिया । कुछ समय बाद उन पर सरकार्यवाह की जिम्मेदारी डाली । अपने सामने भाषण देने का उन्हें अवसर दिया । उन्हें संघ शिक्षा वर्ग में सर्वाधिकारी बनाया और कार्य के प्रसार के लिए उन्हें प्रवास (दौरे) पर भेजा । केवल तीन वर्ष की अवधि में ही श्री गुरुजी संघ-कार्य में पूरी तरह रम गये । उनके मन को विश्वास हो गया कि संघ-कार्य ही भगवान की सबसे बड़ी सेवा है ।

योग्य चयन

डाक्टर साहब ने संगठन का भावी सरसंघचालक पर्याप्त सोच-विचारकर चुना था । उनके मन में आगे आने वाले समय का विचार और उसकी योजनाएँ थीं । इससे डाक्टर साहब की समयसूचकता और दूरदृष्टि का प्रमाण मिलता है । सन् १९४० से लेकर १९७३ तक के ३३ वर्षों में श्री गुरुजी सरसंघचालक के पद पर थे । इस बात की जानकारी सबको है ही कि इस कालखंड में उन्होंने संघ-संगठन का तेज गति से विकास

किया और उनके अद्भुत कर्तृत्व का परिचय संसार को मिला । उन्होंने संघ को एक प्रभावी शक्तिकेन्द्र के रूप में विकसित किया । आज स्थिति यह है कि भारत के मित्र और शत्रु दोनों को भारत के संबंध में अपनी नीति निश्चित करते समय संघ का विचार करना ही पड़ता है– भारत के प्रति दूषित मन्सूबे रखने वालों को भी और उसका सहकार्य चाहने वालों को भी । उन्होंने संघ को देशव्यापी बनाया, प्रत्येक जिले तक उसे पहुँचाया । सामान्य देशवासियों के मन में हिन्दु होने का अभिमान भी उन्होंने जगाया । संघ का कार्य देश भर में फैल जाने के कारण और भिन्न-भिन्न क्षेत्रों के अगुवा लोगों का ध्यान संघ की ओर आकर्षित हो जाने के कारण श्री गुरुजी को संघ के विचार का अनेक प्रकार से और अनेक स्तरों पर मंडन करना पड़ा । उन्होंने व्यापक जनसंपर्क किया और स्थान-स्थान पर लोगों से आत्मीयता के संबंध जोड़े । तरुणों को बड़ी संख्या में प्रचारक बनने की प्रेरणा दी । १९४० में श्री गुरुजी संघ-क्षेत्र के बाहर देश में प्रायः अपरिचित ही थे । किन्तु आगे चलकर लाखों लोग उनके भाषण सुनने आया करते थे और बड़े-बड़े लोग विशिष्ट समस्याओं के संबंध में उनका मत जानने के लिए उत्सुक रहा करते थे ।

तात्त्विक आधार

जनमानस में श्री गुरुजी का एक विशिष्ट स्थान बन गया और संघ-विचारों की लहर देश के कोने-कोने में पहुँची । उसका कारण यह था कि श्री गुरुजी ने हिन्दु मानस का बड़ी बारीकी से अवलोकन किया था । हिन्दु राष्ट्र के जिस सिद्धान्त को डाक्टर साहब ने संघ-कार्य का आधार बनाया था, उसका प्रतिपादन श्री गुरुजी ने राजधानी दिल्ली से लेकर सामान्य गाँवों तक प्रभावी ढंग से किया । उन्हें आज की दुनिया के नये-नये शास्त्रों, दुनिया में पैदा हुई नयी-नयी विचारधाराओं और परिस्थितियों की नवीनतम जानकारी रहती थी । हिन्दु धर्म, हिन्दु संस्कृति और हिन्दु जीवन-पद्धति का उन्होंने गहरा अध्ययन किया था । इसलिए वे आत्मविश्वासपूर्वक बताया करते थे कि दुनिया की समस्याओं को हल करने की शक्ति हिन्दु तत्त्वज्ञान और उसके जीवन-विचार में है । अब तो यह विचार करने का समय आ गया है कि इस सिद्धान्त के आधार पर युग के अनुकूल रचना या व्यवस्था कैसे खड़ी की जाय । समस्याओं में फँसे हुए जगत् को उसका ज्ञान देकर उसे सुख और शांति का मार्ग दिखाना है । यही हमारे राष्ट्र का सदा से चला आया जीवन-कार्य है । उसके लिए आदर्शों के अनुसार चलने वाला एक शक्तिशाली राष्ट्र पहले यहाँ खड़ा करके दिखाना होगा । 'हिन्दु' व 'हिन्दु राष्ट्र' शब्दों की आलोचना करने वालों में अनेक लोग हीन भाव से ग्रस्त रहे हैं । उनका समुचित समाधान करके श्री गुरुजी ने समाज में आत्मगौरव की भावना को पुष्ट किया ।

यह ध्यान देने योग्य बात है कि डाक्टर साहब और गुरुजी के समय की परिस्थितियाँ भिन्न थीं । डाक्टर साहब को हिन्दु समाज की दुर्बलता, आत्मविस्मृति और असंगठन के कारण जिस संकट की आशंका रहा करती थी वह सत्य होता दिखाई देने लगा था । उस स्थिति का सामना करने के लिए सरसंघचालक का दायित्व संभालते ही श्री गुरुजी ने घनघोर प्रवास प्रारंभ किया और थोड़े ही समय में सब ओर शाखाओं का एक सशक्त जाल फैला दिया । किन्तु इसी बीच गुण्डागर्दी, मारपीट, हिंसा का खुला सहारा लेकर देश का विभाजन करवाने पर उतारू मुस्लिम लीग और कुटिल ब्रिटिश शासन में घृणित

साँठगाँठ हो गयी । उधर कांग्रेस, जिसने किसी भी स्थिति में देश का विभाजन स्वीकार न करने की घोषणाएँ की थीं, कुर्सी के लिए उतावली हो गयी । उसमें मुस्लिम हिंसा का सामना करने का आत्मविश्वास भी नहीं था । उसने घुटने टेक दिये और अब तक दिये गये अपने वचनों पर पानी फेर दिया । पाकिस्तान बनने वाले क्षेत्रों में रहने वाले हिन्दुओं को मुसलमानों की नृशंस हिंसा का सामना करना पड़ा । वे कांग्रेस द्वारा दिये गये आश्वासनों पर विश्वास करने के कारण इस भयानक दुर्दशा को प्राप्त हुए थे । विभाजनकारी शक्तियाँ अपने पाशविक बल और कुटिल राजनीति के बूते पर दनदना रही थीं । आत्मविश्वासशून्य हिन्दू समाज खून और अपमान के घूँट पी रहा था । हिन्दु समाज की इस संकट की घड़ी में, संघ अपनी सीमित शक्ति के साथ उसे सहारा देने के लिए श्री गुरुजी के नेतृत्व में आगे आया ।

प्रोफेसर ए.एन. बाली की पुस्तक 'नाउ इट कैन बी टोल्ड' में संघ के स्वयंसेवकों की भूमिका का हृदयस्पर्शी वर्णन मिलता है, जो उन्होंने समूचे पश्चिमी पाकिस्तान में हत्यारे मुजाहिदों से हिन्दु भाइयों और बहिनों की रक्षा करने में निभायी

''इस कठिन घड़ी में लोगों की रक्षा के लिए, आर.एस.एस. नाम से विख्यात उन निःस्वार्थ नौजवानों के अतिरिक्त और कौन आया ?.....

''जब समूचा पंजाब जल रहा था और कांग्रेसी नेता असहाय होकर दिल्ली में पड़े हुए थे, तब आर.एस.एस. के लोगों के अनुशासन, उनकी शारीरिक क्षमता और अपने को जोखिम में डालकर भी कार्य करने की उनकी निःस्वार्थ भावना ने पंजाब के लोगों को बचाया । अब यदि पंजाब के बाहर का कोई व्यक्ति पंजाब के हिन्दुओं और सिखों से कहे कि वे सिखों और राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ के उन कर्मवीरों को भुला दें जिन्होंने अपने प्राणों पर खेलकर उनकी रक्षा की थी तो उसका यह आलाप अनसुना ही जायेगा ।''

अंत में ए.एन. बाली ने लिखा है, ''पश्चिमी पाकिस्तान से आये शरणार्थियों का एक-एक व्यक्ति, जो अब भारत में चाहे जहाँ भी हो, संघ का परम आभारी है । जब सबने उनका साथ छोड़ दिया था, अकेले संघ ने ही उनका साथ दिया ।''

संघ पर पहली चोट

डाक्टर साहब के सपनों को श्री गुरुजी जानते थे । उनका और संघ के प्रत्येक कार्यकर्ता का भी वही स्वप्न था । डाक्टर साहब की दृष्टि में हिन्दुस्थान की स्वतंत्रता तत्काल प्राप्त किये जाने योग्य वस्तु अवश्य थी और उसे प्राप्त करने की व्याकुलता भी उन्हें जीवन भर सताती रही, किन्तु वे ऐसी स्वतंत्रता की कल्पना किया करते थे जिसमें हिन्दु धर्म, हिन्दु संस्कृति और हिन्दु समाज की पूर्ण रक्षा हो और हिन्दु की ओर टेढ़ी नजर से देखने की हिम्मत दुनिया की कोई ताकत न कर पाये । डाक्टर साहब की कल्पना की वह स्वतंत्रता और हिन्दु राष्ट्र तो अभी दूर ही था । जिन लोगों के हाथों में देश की बागडोर आयी थी उनके दिमागों में भी वह बात नहीं थी । इसके विपरीत, १९४७ के आसपास संघ-शाखाओं में बढ़ती हुई हिन्दु-शक्ति को देखकर उनके पेट में मरोड़ उठने लगी थी । वे मानो अवसर की ताक में ही रहे हों । संभवतः इसीलिए स्वतन्त्र भारत की सरकार ने गांधी जी की दुर्भाग्यपूर्ण हत्या का झूठा आरोप संघ के माथे थोपकर उसे गैरकानूनी घोषित कर दिया । उस पर और भी अनेक मनगढ़ंत आरोप लगाये गये ।

श्री गुरुजी सहित हजारों कार्यकर्ताओं को बंदी बना लिया गया ।

किन्तु संघ इस दमन के आगे झुका नहीं । श्री गुरुजी के तेजस्वी नेतृत्व में वह इस अग्निपरीक्षा में से निखरकर ही बाहर आया । डाक्टर साहब द्वारा निर्मित कार्यपद्धति की ही यह देन थी कि संगठन का ढाँचा अटूट बना रहा । श्री गुरुजी ने सब जगह घूम-घूमकर स्वयंसेवकों को कार्य को आगे बढ़ाने की प्रेरणा दी । विचारों के क्षेत्र में जो भ्रम-निर्माण हुए थे, या आगे हो सकते थे, उनको उन्होंने दूर किया । सब प्रश्नों के उन्होंने सुस्पष्ट उत्तर दिये । उनके विचार सुनने के लिए स्थान-स्थान पर विशाल संख्या में लोग एकत्रित होते थे । वे हिन्दु-संगठन का कार्य बिना रुके लगातार करते रहने की आवश्यकता समझाते थे ।

नयी परिस्थिति, नयी नीति

ध्येय पर से दृष्टि न हटाते हुए, बदली हुई परिस्थिति में नयी नीतियों व पद्धतियों का विकास करना संघ सरीखे गतिमान और सजीव संगठन में आवश्यक होता है । किसी भी संगठन के प्रारंभ-काल में उसके भविष्य की सारी बातों का विचार नहीं किया जा सकता । संगठन की किस अवस्था में किसको क्या-क्या काम करना होगा, इसका 'ब्लू प्रिंट' जन्म के समय कभी तैयार नहीं किया जाता । उस समय तो निश्चित किया जाता है केवल उद्देश्य और उस उद्देश्य की ओर ले जाने वाला मार्ग । उस मार्ग पर चलते हुए, उपलब्ध साधनों में से जो अनुकूल और सही सिद्ध होंगे, उनका उपयोग कर लक्ष्य की ओर बढ़ना होता है । समय के अनुसार जहाँ आवश्यक हुआ, काम का रूप बदलता चलता है और ब्यौरे तय होते चलते हैं । कई बातें उचित समय आने पर कही जाती हैं तथा अनुकूल अवसर आने पर ही उन्हें और अधिक स्पष्ट किया जाता है । डाक्टर साहब की आकांक्षाओं को साकार करने में श्री गुरुजी ने अनुपम कुशलता और प्रतिभा का परिचय दिया।

डाक्टर साहब के समय में इस देश में अंग्रेजों का राज्य था । उनकी सत्ता को हटाकर राष्ट्र को स्वतंत्र करना उन दिनों सभी का उद्देश्य था । इसमें किसी का मतभेद नहीं था । यह रणनीति तो एक बार समझी जा सकती है कि स्वतंत्रता का आन्दोलन चलाते समय अंग्रेजों और साम्प्रदायिक मुसलमानों के साथ एक ही समय संघर्ष न किया जाय, किन्तु डाक्टर साहब को यह बात बिल्कुल मान्य नहीं थी कि यह रणनीति किसी समय लाचारी और तुष्टीकरण की घातक विकृति में बदल जाय । हिन्दु समाज पर होने वाले आक्रमण, उसके न्यायपूर्ण अधिकारों का रौंदा जाना, मुसलमानों का दगा कराने का स्वभाव आदि के बारे में उनके मन में क्षोभ था जिसे वे खुलकर व्यक्त किया करते थे । गांधी जी और उनके सहयोगी जमनालाल बजाज सरीखे व्यक्तियों के सामने भी उन्होंने अपनी बात स्पष्ट रूप से रखी थी । हिन्दु समाज पर हो रहे अन्यायों और अत्याचारों के कारण उनके मन में जो गहरी वेदना उत्पन्न होती थी उसे उन्होने अपने एक भाषण में इस प्रकार प्रकट किया था--

"जहाँ हजार-पाँच सौ साल केवल हिन्दुस्थान पर ही नहीं अपितु आसपास के देशों पर भी हिन्दुओं का अधिकार था, वहाँ आज ऐसी दुर्दशा है कि खुद हिन्दुस्थान में भी हिन्दु इस देश को हिन्दुस्थान नहीं कह सकता ।

"आज हिन्दु समाज चारों ओर से संकटों से घिरा है । इसमें दोष हमारा ही है । हम दुर्बल हैं और सो रहे हैं । एक ओर है विधर्मी विदेशी शासकों का राजनीतिक प्रभुत्व और दूसरी ओर हैं मुसलमानों के हम पर होने वाले सामाजिक अत्याचार । कैंची की दो फाँकों के बीच हम फँसे हुए हैं । मुसलमान बनाने के लिए हिन्दुओं पर किये जाने वाले अत्याचारों तथा हमारी बहू-बेटियों पर किये जाने वाले बलात्कारों के संबंध में यदि मैं बोलने लगूँ तो अपनी भावनाओं को मैं वश में नहीं रख पाऊंगा । इसलिए उस संबंध में अधिक नहीं बोलता । इसी प्रकार ईसाइयों के द्वारा भी हम लोगों पर चोट की जा रही है ।

"यदि हम चाहते हैं कि इन आघातों से हमारे समाज की रक्षा हो, तो हमें संगठित होना होगा । इसी एकमेव उद्देश्य से सन् १९२५ में राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ की स्थापना हुई है । उस समय हम लोगों को देशद्रोही कहा गया, किन्तु आज परिस्थिति बहुत बदल गयी है ।

"हमारा विश्वास है कि परमेश्वर की हम पर कृपा-दृष्टि है । हमें किसी पर आक्रमण नहीं करना है । विदेशी लोगों को भी यह नहीं भूलना चाहिए कि वे हिन्दुओं के हिन्दुस्थान में रह रहे हैं । उन्हें हिन्दुओं के अधिकारों को दबाने का कोई अधिकार नहीं है । हिन्दु धर्म और हिन्दु संस्कृति के भले के लिए हमें यह कार्य करना चाहिए और अपनी उज्ज्वल संस्कृति की रक्षा कर उसे अधिक पुष्ट करना चाहिए । तभी आज की दुनिया में हम और हमारा समाज टिक सकेंगे ।"

डाक्टर साहब ने संघ के संबंध में यह भूमिका प्रस्तुत की थी । श्री गुरुजी को इसी के अनुसार प्रभावी काम खड़ा करना था । किन्तु १९४७ के बाद देश की स्थिति में भारी परिवर्तन आ चुका था । देश में जहाँ एक नया राजनीतिक ढाँचा तैयार हुआ था और लोकतंत्र की स्थापना के साथ लोकमत की शक्ति का उदय हुआ था, वहीं पाश्चात्य जीवन-प्रणाली व विचारधाराओं का भी प्रभाव बढ़ने लगा था और उचित शिक्षा-व्यवस्था न होने के कारण स्वदेशी पद्धति और स्वधर्म के प्रति अज्ञान व अश्रद्धा बढ़ रही थी । इस स्थिति को ध्यान में रखते हुए श्री गुरुजी ने संघ के अनेक सुलझे हुए कार्यकर्ताओं को सामाजिक जीवन के भिन्न-भिन्न क्षेत्रों में आवश्यक भूमिका निभाने के लिए भेजा । उनसे अपेक्षा की गयी कि उन क्षेत्रों में वे राष्ट्रीय विचारों का प्रभाव-निर्माण करें ।

डाक्टर साहब के बीजरूप कार्य

डाक्टर साहब ने जो-जो बातें सूत्ररूप में बतायी या की थीं, श्री गुरुजी ने यथासमय अनेक ब्यौरे जोड़कर उनका विस्तार किया । नागपुर से कुछ दूर रामटेक नामक स्थान पर एक प्राचीन राममन्दिर है । वहाँ रामनवमी के दिन बड़ा मेला लगता है । मेले के समय कई असामाजिक तत्त्व यात्रियों को बहुत तंग किया करते थे । मेले में व्यवस्था भी ठीक नहीं रहती थी । डाक्टर साहब ने कई वर्षों तक संघ के स्वयंसेवक भेजकर मेले को व्यवस्थित रूप दिलवाया और स्वधर्मी व विधर्मी बदमाशों का उपद्रव बंद करवाया । स्वयंसेवकों ने यह सेवा-कार्य मन लगाकर किया और सबने उसकी बड़ी प्रशंसा की ।

स्वयं कष्ट उठाकर समाज की सेवा करने का भाव तो डाक्टर साहब की रग-रग में था । कलकत्ते में जब वे डाक्टरी की शिक्षा ले रहे थे तब दामोदर नदी में आयी बाढ़ के

समय और महामारी के समय अपने साथियों सहित उन्होंने आपत्ति में पड़े हुए लोगों की अनेक कष्ट सहते हुए सहायता की। संकट में फँसे लोगों को सहायता पहुँचाना, अन्याय का प्रतिकार करना आदि बातें वे सहज रूप से किया करते थे। वर्धा के पास आर्वी नामक स्थान पर एक लड़की का विवाह एक बूढ़े व्यक्ति से करने का षड्यंत्र लड़की के पालकों ने रचा। उस लड़की की विनती पर डाक्टर साहब ने उसे इस संकट से मुक्त कराया और योग्य वर से उसका विवाह करा दिया।

मस्जिद के सामने से बाजा बजाते हुए जाने का अधिकार नागरिकों को है। किन्तु मुसलमानों के डर के कारण शादी-बारात के बाजे भी मस्जिद के सामने बंद रखे जाते थे। डाक्टर साहब को गुण्डागर्दी के सामने झुक जाने की प्रवृत्ति और यह कायरता बहुत चुभा करती थी। सन् १९२२ में बहुत बड़े पैमाने पर उन्होंने 'दिंडी-सत्याग्रह' करवाया था। किन्तु एक बार ऐसा भी प्रसंग आया जब बाजा बजाने वाला डरने लगा तो उन्होंने स्वयं ही बाजा भी बजाया। काशी विश्वनाथ और हिन्दुओं के अन्य पवित्र मन्दिरों की विडंबना के संबंध में बोलते समय उनका गुस्सा वश के बाहर हो जाता था। विदेशियों ने इस देश पर अपना प्रभुत्व जमाने के लिए अनेक गाँवों और नगरों के नाम बदल दिये थे। डाक्टर साहब ने उन्हें बदलकर फिर से उनके पूर्व के नाम चालू करवाये। दावल भक्त सरीखा उपनाम बदलकर एक स्वयंसेवक का नाम गौतम रखवाया।

"वे कभी हिन्दु थे"

डाक्टर साहब की इच्छा थी कि हिन्दु समाज परायों का भक्ष्य न बने और अपने लोगों की वह चिन्ता करे। भारत में उस समय जो दस करोड़ मुसलमान थे, उनके संबंध में डाक्टर साहब ने कहा था कि "ये दस करोड़ लोग पहले कभी हिन्दु ही थे। किन्तु हम अपनी उदासीनता और निष्क्रियता के कारण उन्हें गँवा बैठे।" डाक्टर साहब के समय आर्य समाज द्वारा परावर्तन के—अर्थात् पराये मत में गये लोगों को पुनः विधिपूर्वक हिन्दु बना लेने के —प्रयत्न चला करते थे। स्वामी श्रद्धानंद के इस कार्य से क्षुब्ध होकर एक मतांध मुसलमान ने उनकी हत्या कर डाली। १९२१ में मलाबार में हिन्दुओं पर किये गये अत्याचारों की कहानी भी दिल दहलाने वाली थी। डाक्टर साहब का उन सभी कार्यों को समर्थन रहता था जो हिन्दुओं को मतांध मुसलमानों व ईसाई मिशनरियों की आक्रामक और धूर्त कार्यवाहियों से बचाने के लिए किये जाते थे। वे अपने कुछ मित्रों को इस प्रकार के काम करने के लिए प्रोत्साहन देते थे। नागपुर के सार्वजनिक जीवन के अपने एक सहयोगी श्री काकासाहेब चोलकर को उन्होंने अनाथ हिन्दु बच्चों के लिए नागपुर अनाथ विद्यार्थी गृह स्थापित करने की प्रेरणा दी। इसके पीछे दो उद्देश्य थे। एक, उन्हें अच्छे संस्कारी वातावरण में पालना और दो, विधर्मियों से उन्हें बचाना।

डाक्टर साहब की दृष्टि में शिक्षा-संस्थाओं का बड़ा महत्त्व था। वे संघ-कार्य के विस्तार और विद्यार्थियों पर अच्छे संस्कार डालने के लिए बहुत उपयोगी होती थीं। अनाथ विद्यार्थी गृह के तत्त्वावधान में एक हाईस्कूल प्रारंभ किया गया और संघ के अनेक कार्यकर्ता वहाँ काम करते रहे। संघ के आज के सरसंघचालक श्री बालासाहेब देवरस भी कुछ समय तक उस विद्यालय में शिक्षक रहे थे। नागपुर का 'न्यू एरा इंग्लिश हाईस्कूल' भी संघ के काम में अपना योगदान दे रहा था। डाक्टर साहब ने अनेक उच्च

शिक्षा-प्राप्त तरुणों को शिक्षक की नौकरी स्वीकार कर अन्यान्य स्थानों पर जाने के लिए प्रेरित किया । वे कहा करते थे कि संघ का कार्य करने में अन्य व्यवसायों के लोगों की तुलना में शिक्षक अधिक सफल होता है । वह विद्यार्थियों के सम्पर्क में रहता है, उनका गठन कर सकता है और संघ में आने की उन्हें प्रेरणा दे सकता है । वह प्रत्यक्ष शाखा भी चला सकता है । ऐसे कार्यकर्ताओं की सूची बड़ी लंबी है जिन्होंने इसी प्रेरणा से शिक्षक की नौकरी स्वीकार कर बड़ी सफलतापूर्वक संघ-कार्य किया ।

बीज ही वृक्ष बना

डाक्टर साहब द्वारा बीज रूप में किये गये ऐसे अनेक कार्य श्री गुरुजी के समय में बढ़े, फले और फूले । उनमें से अनेकों को विशाल स्वरूप प्राप्त हो गया है । मंदिरों की व्यवस्था अधिक अच्छी करने तथा परायों के आक्रमणों से उनकी रक्षा करने के लिए स्वयंसेवकों ने समाज की सहायता से क्षेत्र या मंदिर समितियों का गठन किया है । केरल के शबरीमलै तीर्थ-क्षेत्र में नीलक्कल नामक स्थान पर ईसाइयों ने वोटों के लालची राजनीतिक नेताओं की सहायता से चर्च की स्थापना करने का प्रयत्न किया । स्वयंसेवकों ने समाज की सहायता से उसे असफल कर दिया । इसी प्रकार जब कन्याकुमारी की विवेकानन्द-शिला पर ईसाइयों ने कब्जा करने का प्रयत्न किया तो समाज के सहयोग से स्वयंसेवकों ने उसे बचाया और वहाँ भव्य विवेकानन्द-स्मारक खड़ा कर दिया । राम-जन्मभूमि तथा अन्य मंदिरों की मुक्ति के लिए हिन्दु समाज द्वारा आन्दोलन चलाये जा रहे हैं । सरकार द्वारा मंदिरों की सम्पत्ति हड़पने की यत्र-तत्र चेष्टा होती रहती है । स्वयंसेवकों ने उसे रोकने में भी सफलता प्राप्त की है । यह सब इस बात का प्रमाण है कि जाग्रत हिन्दु अपने मठ-मन्दिरों और श्रद्धास्थानों के साथ किसी प्रकार की छेड़छाड़ सहन करने के लिए अब तैयार नहीं है ।

बिहार, राजस्थान, महाराष्ट्र, गुजरात आदि में पड़े भीषण अकाल के दिन हों अथवा अन्य क्षेत्रों में आयी बाढ़, तूफान, भूकम्प आदि जैसे प्राकृतिक प्रकोप का समय, स्वयंसेवकों ने संगठित सेवा-कार्य का सर्वोच्च कीर्तिमान स्थापित किया । गैस या रेल-दुर्घटना हो अथवा दंगे जैसे मानव-निर्मित संकट के प्रसंग हों, संघ के स्वयंसेवक सदैव अग्रिम पंक्ति में खड़े रहकर सेवा-कार्य करते हैं । चीन और पाकिस्तान के साथ हुए युद्धों के समय स्वयंसेवकों ने अपने जीवन को संकट में डालकर सेना की सहायता व सेवा के अनुकरणीय आदर्श उपस्थित किये हैं । डाक्टर साहब की सेवा-भावना ही इन स्वयंसेवकों की प्रेरणा है । समाज का संघ के स्वयंसेवकों पर उनकी तत्परता, कर्मठता और निःस्वार्थ वृत्ति के कारण इतना विश्वास बन चुका है कि उनके द्वारा संचालित सेवा-कार्यों के लिए धन और जन-समर्थन की कमी नहीं पड़ती । डाक्टर साहब की यह इच्छा थी कि हिन्दु समाज में अपने सामाजिक दोषों को दूर करने की तत्परता और अपने ऊपर होने वाले आक्रमणों का सामना करने के साहस व शक्ति का निर्माण होना चाहिए । इसी दृष्टि से श्री गुरुजी ने विश्व हिन्दु परिषद् और वनवासी कल्याण आश्रम नामक दो संस्थाएँ प्रारंभ करवायीं । विश्व हिन्दु परिषद् के माध्यम से हिन्दुओं के विभिन्न पंथ, उपपंथ, उनके धर्माचार्य, मठ, मंदिर आदि सबका ध्यान समाज की दशा की ओर आकर्षित किया गया तथा समाज में एकता और दृढ़ता लाने में उनका सहयोग

प्राप्त करने का प्रयत्न किया गया । अस्पृश्यता रूपी कलंक को दूर करने के लिए धर्माचार्यों द्वारा व्यवस्था दिलवायी गयी कि अस्पृश्यता का धर्म में कोई स्थान नहीं है । 'न हिन्दु पतितो भवेत्' (अर्थात् कोई हिन्दु पतित नहीं हो सकता) तथा 'हिन्दवः सोदरः सर्वे' (सब हिन्दु भाई-भाई हैं) जैसे उद्घोष इन संस्थाओं के प्रयासों से हिन्दु-संगठन के मंत्र बन गये ।

वनवासी कल्याण आश्रम ने हिन्दु समाज के मुख्य प्रवाह से अलग रह गये अपने वनवासी बन्धुओं पर विशेष रूप से ध्यान केन्द्रित किया । उनमें अपने पैरों पर खड़े होने का स्वाभिमान तथा अपने बाप-दादों के समय से चली आयी उपासनापद्धति के प्रति विश्वास जगाया गया । ईसाई पादरियों के कुचक्रों का सामना करने का साहस भी उनमें पैदा किया गया । ये दोनों संस्थाएँ छात्रावासों, चिकित्सा-केन्द्रों, भजन-मंडलों, उद्योग-प्रशिक्षण केन्द्रों आदि की स्थापना द्वारा अपने इन बन्धुओं को बाकी समाज की बराबरी में लाने के काम में जुटी हैं । परावर्तन के काम की ओर भी दोनों संस्थाएँ पूरा ध्यान दे रही हैं । हजारों बन्धुओं को पुनः अपने पूर्वजों के धर्म में वापस लाने में उन्हें सफलता मिली है । स्थानीय समाज की सहायता से और भी अनेक सेवा-प्रकल्पों का, जैसे—बाल संस्कार-केन्द्र, शिशु-संगोपन केन्द्र, अध्यापन-कक्षाएँ, चल-चिकित्सालय, रक्त-कोष, योगान-कक्षाएँ, प्रौढ़-शिक्षा वर्ग, वाचनालय, पुस्तकालय आदि प्रकार की गतिविधियों का संचालन हो रहा है । यह कहना अतिशयोक्ति नहीं होगी कि किसी भी अन्य संगठन की तुलना में राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ के स्वयंसेवक आज देश भर में सबसे अधिक सेवा-कार्य चला रहे हैं । इसी प्रकार हिन्दु-हितों की रक्षा तथा हिन्दुओं के प्रति होने वाले अन्यायों के विरुद्ध संघर्ष करने के लिए हिन्दु मुन्नणी और हिन्दु मंच जैसे अनेक संगठन देश के भिन्न-भिन्न भागों में चलाये जा रहे हैं ।

शिक्षा के क्षेत्र में

डाक्टर साहब के समान श्री गुरुजी ने भी शिक्षा और विद्यार्थियों की ओर ध्यान दिया । यह दुर्भाग्य ही है कि स्वतंत्रता-प्राप्ति के बाद शिक्षा 'सेक्युलरिज्म' की विकृत कल्पना का शिकार होकर निष्प्राण हो गयी है । हीनता का भाव बढ़ाने वाला इतिहास उसी शिक्षा की देन है । समाज के चरित्र-निर्माण में वह असमर्थ है । पालक, विद्यार्थी, शिक्षा-संस्था व शिक्षक, सबके मनों में शिक्षा का उपयोग धनोपार्जन मात्र रह गया है । इस दुश्चक्र को तोड़कर, शिक्षा को संस्कार देने का सशक्त माध्यम बनाने के लिए शिशु-मंदिर से लेकर महाविद्यालय तक हजारों शिक्षा-संस्थाएँ आज संघ की प्रेरणा से चलायी जा रही हैं । शिशु-मंदिरों की संख्या ३००० पार कर चुकी है और वे पालकों के स्नेह व आदर के पात्र हैं । उन्हें विश्वास है कि वहाँ उनके बच्चों को अच्छे संस्कार मिलेंगे । संस्कृत भाषा की शिक्षा सरकारी विद्यालयों में प्रायः बन्द ही कर दी गयी है किन्तु स्वयंसेवकों द्वारा संचालित शिशु-मंदिरों में संस्कृत की शिक्षा बड़े आग्रह के साथ चल रही है । और भी अनेक मार्गों से स्वयंसेवकों ने संस्कृत के प्रचार-प्रसार का कार्य हाथों में लिया है । उनके द्वारा संचालित संस्कृत-संभाषण के वर्गों ने यह विश्वास पैदा कर दिया है कि साधारण से साधारण व्यक्ति भी दस दिनों के अन्दर संस्कृत में सामान्य व्यवहार चलाने की योग्यता प्राप्त कर सकता है ।

संघ के पहले प्रचारक श्री बाबा साहेब आपटे स्वयंसेवकों से संस्कृत सीखने का आग्रह किया करते थे । वह आज संस्कृत संभाषण शिविरों के माध्यम से साकार हो रहा है ।

इन सब कामों को संभालने वाले कार्यकर्ताओं की विशेषता यह है कि वे सरकार का मुँह न जोहते हुए समाज से शक्ति प्राप्त कर चल रहे हैं । ये संस्थाएँ या सेवा-कार्य उन सरकारों की कृपा पर निर्भर नहीं हैं जो तथाकथित 'सेक्युलरिज्म' का शिकार होकर सदा हिन्दु-विरोधी रुख अपनाया करती हैं । यही कारण है कि वहाँ चलने वाली कुर्सी की लड़ाई व हार-जीत के परिणामों से वे अप्रभावित हैं । इन संस्थाओं को चलाने वालों की प्रेरणा यह है कि विराट् समाज-पुरुष अथवा समाजरूपी भगवान् के चरणों में अपनी सेवा निःस्वार्थ भाव से अर्पित की जानी चाहिए । समाज के संबंध में अपनेपन का भाव उनके मनों में काम कर रहा है । चारों ओर के भ्रष्ट और स्वाभिमानशून्य वातावरण को बदल डालने की तीव्र लालसा उनसे यह कार्य करवा रही है । डाक्टर साहब का अनुसरण करते हुए वे इन अच्छे कामों का श्रेय भी नहीं लेना चाहते । उनकी यह मनोरचना उस अहंकाररहित व्यापक दृष्टि का परिणाम है जिसे विकसित करने की चिंता डाक्टर साहब ने शुरू से ही की थी ।

बड़ी लकीर खींचो

इस बारे में डाक्टर साहब के विचार ध्यान देने योग्य हैं । एक प्रसंग पर वे कहते हैं— "संघ का कार्य और उसकी कार्यपद्धति हम लोगों का कोई नया आविष्कार नहीं है । संघ ने तो परम पवित्र सनातन हिन्दु धर्म, अपनी प्राचीन हिन्दु संस्कृति, अपने स्वयंसिद्ध हिन्दु राष्ट्र और अनादि काल से चले आ रहे भगवा ध्वज को जैसे का तैसा सबके सामने रखा है । इन बातों में चैतन्य भरने के लिए समय की आवश्यकता के अनुसार कार्य-पद्धति अपनायी जायेगी ।" इससे स्पष्ट है कि उन्होंने कभी इस बात का गौरव करने की इच्छा नहीं की थी कि वे कोई नया कार्य कर रहे हैं ।

उसी प्रकार, सर्वसाधारण समाज से अपने को अलग मानते हुए उसको सुधारने की भाषा भी उन्होंने कभी नहीं बोली । अस्पृश्यता सरीखी कुरीति का ही उदाहरण लें । छुआछूत मिटाने के लिए डाक्टर साहब अथवा संघ ने कोई आन्दोलन नहीं चलाया । इस विषय के संबंध में भाषणबाजी नहीं की गयी । उन्होंने सबके सामने एकात्म जीवन का भावात्मक विचार रखा कि सब हिन्दु एक हैं, सब समान हैं, सब भाई-भाई हैं; संघ में जात-पाँत का विचार भी नहीं होना चाहिए । सारा जोर राष्ट्रीय और सामाजिक एकता पर दिया । प्रान्त, भाषा, पंथ आदि सारी बातों को अपने में समाहित कर लेने वाले विशाल और एकात्म हिन्दु समाज के संगठन की आकांक्षा उन्होंने जगायी । वैसा ही व्यवहार भी किया । इसी कारण संघ के कार्यकर्ताओं में अखिल भारतीय दृष्टि का विकास हुआ । ऐसा मानने का स्वभाव बना कि सारा देश, सभी भाषाएँ, सारे पंथ अपने ही हैं । इसका अनुभव स्वयं गांधी जी को सन् १९३४ में वर्धा के संघ-शिविर में प्राप्त हुआ था । समाज को समरस और सुदृढ़ बनाने के लिए संघ का यह अनुभूत मार्ग सफल सिद्ध हुआ है । हिन्दु समाज के अंदर आपसी टकराव और कटुता में न उलझते हुए संघ संगठन के मार्ग पर ही चलता रहा है ।

डाक्टर साहब ने जो कार्य-सूत्र हाथ में लिया था, उसी को पकड़कर श्री गुरुजी के मार्गदर्शन में शिक्षा-क्षेत्र के समान ही मजदूर, किसान, सहकारिता, संगीत व कला और उपभोक्ता आदि क्षेत्रों में भी संघ के कार्यकर्ताओं ने संगठनात्मक कार्य प्रारंभ किये और उन्हें आगे बढ़ा रहे हैं। वे कार्य अ. भा. विद्यार्थी परिषद, भारतीय मजदूर संघ, भारतीय किसान संघ, सहकार भारती, संस्कार भारती, ग्राहक पंचायत आदि नामों से प्रसिद्ध हैं। दीनदयाल शोध संस्थान और विवेकानन्द शिला स्मारक भी उसी शृंखला की महत्त्वपूर्ण कड़ियाँ हैं।

किन्तु यह सब करते हुए भी श्री गुरुजी ने संघ की शाखा-पद्धति का आग्रह तनिक भी कम नहीं होने दिया। उन्होंने असंदिग्ध रूप से और बार-बार यह बताया कि शाखा का कार्य ही सब कामों का आधार है। उन्होंने इस बात का भी आग्रह किया कि इन सारे कामों के द्वारा संघ के विचार और हिन्दु जीवन-मूल्यों का ही पोषण होना चाहिए और हिन्दु राष्ट्र के नवोत्थान के लिए ही प्रत्येक कदम उठाया जाना चाहिए। उनका स्पष्ट मार्गदर्शन था कि यहाँ अभ्युदय और निःश्रेयस दोनों ही पहलुओं का ध्यान रखने वाले जीवन का निर्माण होना चाहिए। डाक्टर साहब और उनके उत्तराधिकारियों ने अध्यात्म की पक्की नींव पर परम वैभवशाली राष्ट्र के निर्माण का लक्ष्य ध्रुवतारे के समान अपने सामने रखा। उनके पग सदैव उसी दिशा में बढ़े। इसी ध्येय को सामने रखकर स्वयंसेवकों द्वारा अन्यान्य कार्य चलाये जा रहे हैं जिनके लिए अब 'संघ-परिवार' शब्द रूढ़ हो गया है। वे संघरूपी वटवृक्ष की जटाएँ हैं।

लकीर के फकीर न बनें

जैसे-जैसे संगठन बढ़ता गया, वैसे-वैसे नये-नये दायित्व स्वीकार किये जाने लगे। इससे यह सहज ही स्पष्ट होने लगा कि हिन्दु राष्ट्र को परम वैभव की दिशा में बढ़ाने के लिए संघ अपनी शक्ति का किस भाँति प्रयोग करेगा। इन सारे नानाविध कार्यों का वैचारिक अधिष्ठान हिन्दुत्व ही बनाये रखा गया। ध्यान में रखने योग्य बात यह है कि डाक्टर साहब ने, चाहे शाखा का कार्य हो या चाहे परम वैभव की ओर देश को ले जाने की बात हो, सबको सिद्धान्त और संगठन के आधार पर खड़ा किया, न कि व्यक्ति-विशेष पर।

सार्वजनिक कार्यों में संलग्न लोगों को यह देखकर आश्चर्य होता है कि संघ के अनेक कार्यकर्ता लगातार कितने ही दशकों से एक ही कार्य उसी उत्साह से करते चले आ रहे हैं। डाक्टर साहब के जीवन की प्रेरणा ही ऐसी थी। इसका यश उनके द्वारा विकसित की गयी उस लचीली कार्य-पद्धति को भी जाता है जो सब परिस्थितियों में ध्येय-पथ की ओर बढ़ते जाने के अनेक मार्ग प्रस्तुत करती है। डाक्टर साहब सदा कहा करते थे कि किसी भी नेता के 'पदचिन्हों पर चलने' का उपदेश देने की एक परिपाटी ही पड़ गयी है; किन्तु यह उपदेश उचित नहीं है क्योंकि यदि अनुयायी केवल वहीं तक जायें जहाँ तक उनके नेता गये और बाद में इसलिए रुक जायें कि आगे पदचिन्ह नहीं दिखाई दे रहे हैं, तो प्रगति कैसे होगी? आगे की मंजिलें कैसे पार की जायेंगी? लक्ष्य तक कैसे पहुँचा जा सकेगा? कई लोगों ने उन्हें लोकमान्य तिलक के पदचिन्हों पर चलने के प्रसंग द्वारा इस बात को समझाते देखा है। इसलिए डाक्टर साहब द्वारा प्रारंभ किये गये संगठन के अनुयायियों ने इस प्रकार रुक जाने की भूल नहीं की। नयी परिस्थितियों की चुनौतियाँ

उन्होंने स्वीकार कीं और कार्य को बढ़ाते चले गये ।

उदाहरण के लिए कहा जा सकता है कि डाक्टर साहब ने सम्पूर्ण संघ को किसी भी आन्दोलन में प्रत्यक्ष भाग नहीं लेने दिया । सन् १९३० के कांग्रेस के आन्दोलन में उन्होंने भाग लिया अवश्य, किन्तु व्यक्ति के नाते ही । संगठन को उससे अलग रखा । पुणे में जब सोन्या-मारुती सत्याग्रह हुआ, उस समय वहाँ के संघ शिक्षा वर्ग में सैकड़ों तरुण आये हुए थे । किन्तु वर्ग के प्रशिक्षण-कार्य में उन्होंने बाधा नहीं आने दी, यद्यपि वे स्वयं उस सत्याग्रह में सम्मिलित हुए थे । १९३८ के भागानगर (हैदराबाद) सत्याग्रह में भी संघ के स्वयंसेवक व्यक्तिशः ही गये । डाक्टर साहब का सोचना था कि आन्दोलन चलते हैं और समाप्त होते हैं, किन्तु उनके कारण राष्ट्र के पुनरुत्थान के लिए चलाये जा रहे संघ-कार्य में व्यवधान नहीं पड़ने देना चाहिए । अन्यथा, उसका अर्थ होगा संगठनरूपी कल्पवृक्ष को असमय में ही उखाड़ फैंकना । श्री गुरुजी के समय में सन् १९४२ का 'भारत छोड़ो' आन्दोलन छिड़ा । अनेक स्थानों पर स्वयंसेवकों ने, संगठन के काम को बिना रोके, उस आन्दोलन में व्यक्तिशः भाग लिया ।

किन्तु १९४८ में जब संघ पर लगाये गये प्रतिबन्ध को हटवाने के लिए आन्दोलन की आवश्यकता पड़ी, तब संघ के स्वयंसेवकों ने न्याय प्राप्त करने के लिए शाखा लगाकर सत्याग्रह किया और सरकार को प्रतिबंध उठाने के लिए बाध्य कर दिया । १९५३ में संघ के नेतृत्व में गोहत्या-बंदी के लिए अभियान चलाया गया जिसमें स्वयंसेवकों ने इसके समर्थन में पौने दो करोड़ हस्ताक्षर इकट्ठे कर एक विश्व-कीर्तिमान स्थापित किया । पाकिस्तान के साथ तीन बार हुए संघर्ष में स्वयंसेवकों ने बहुमूल्य योगदान दिया । १९४७ में पाकिस्तान द्वारा जम्मू-काश्मीर पर किये गये आक्रमण के समय श्रीनगर और जम्मू का बचाव संघ के स्वयंसेवकों के साहस के कारण ही संभव हो सका । इसके अनेक उदाहरण विद्यमान हैं कि अपनी मातृभूमि से असीम प्रेम करने वाले अनुशासनबद्ध स्वयंसेवक समय आने पर उसके लिए विकट से विकट साहस का काम कर सकते हैं ।

देश-विभाजन के समय अपने देशवासियों की रक्षा करने के लिए न जाने कितने स्वयंसेवकों ने अपना बलिदान दे दिया । उन्होंने अपनी सुरक्षा का विचार नहीं किया और तब तक अपने क्षेत्र को नहीं छोड़ा, जब तक शेष लोगों की सुरक्षा-व्यवस्था नहीं हो गयी । इन प्रसंगों के जानकार, सेना के एक बड़े अधिकारी ने एक बार श्री गुरुजी से पूछा कि संघ के स्वयंसेवकों को आप ऐसी श्रेष्ठ 'ट्रेनिंग' कैसे देते हैं ? श्री गुरुजी ने हँसते-हँसते बताया कि हम तो उन्हें कबड्डी खेलना सिखाते हैं । कबड्डी खेलते-खेलते ही उनमें ये बहुमूल्य गुण पैदा हो जाते हैं और उनका हृदय साहसी बनता है । और, सारी बातें इसी पर निर्भर रहती हैं कि मनुष्य का हृदय कैसा है । हृदय दुर्बल हो तो केवल शस्त्र रखने अथवा शरीर बलवान होने से भी काम नहीं बनता । शाखा के कबड्डी जैसे कार्यक्रम मनुष्य के उसी हृदय को संस्कारित करने के माध्यम हैं ।

सन् १९७५-७६ के आपात्काल की अत्यन्त निराशाजनक परिस्थिति का संघ के स्वयंसेवकों ने दृढ़ आत्मविश्वास के साथ सामना किया और सारे समाज को साथ लेकर उस संकट को पार किया । इस प्रकार परिस्थिति की चुनौती को स्वीकार करते हुए, स्वयंसेवकों ने वैचारिक मोर्चे पर ही नहीं अपितु संघर्ष के अवसर पर भी समाज में काम

करने का अनुभव प्राप्त किया है। वैचारिक और शारीरिक दोनों ही प्रकार के आघातसंघ पर बारम्बार होते रहे हैं। कार्यकर्ताओं ने उनका सफलतापूर्वक सामना किया है। गत पाँच-सात वर्षों का नया-नया इतिहास भी इसका साक्षी है। केरल में हिन्दुत्व-विरोधी शक्तियों द्वारा संघ तथा हिन्दु समाज पर कई बार आक्रमण किये गये। संघ-कार्यकर्ताओं ने उनका मुँहतोड़ उत्तर दिया और हिन्दु-विरोधियों को धूल चाटनी पड़ी। स्वाभाविक ही, इससे वहाँ हिन्दुओं में आत्म-विश्वास का संचार हुआ है।

वैचारिक मोर्चे पर

डाक्टर साहब हिन्दु के नाते सोचने का सदैव आग्रह करते थे। उनकी यह दृढ़ मान्यता थी कि 'हिन्दुत्व ही राष्ट्रीयत्व है।' ये दोनों ही सूत्र संघ द्वारा चलाये जा रहे वैचारिक आन्दोलन के प्राण हैं। संघ के कार्यकर्ता सभी क्षेत्रों में इसी वैचारिक अधिष्ठान पर खड़े होकर कार्य कर रहे हैं। उन्होंने अर्थनीति, राजनीति, श्रमनीति, कृषिनीति, समाजनीति आदि के माध्यम से उन्हीं हिन्दु जीवन-मूल्यों को आगे बढ़ाया है। श्री गुरुजी ने वर्ग-संघर्ष, गलाकाट स्पर्धा, उससे जुड़े भोगवाद, व्यक्ति-स्वातंत्र्य के नाम पर चलने वाले स्वैराचार और उसकी प्रतिक्रियास्वरूप सरकार की तानाशाही आदि जैसी असन्तुलित विचारधाराओं का कड़ा विरोध किया। उन्होंने जिस शैली में हिन्दु जीवन-आदर्शों के संबंध में समाज में विश्वास-निर्माण किया, वह सचमुच ही विलक्षण है। उसी विचार-प्रवाह का समाज-जीवन के सभी क्षेत्रों में संघ के कार्यकर्ता निर्माण कर सके।

हिन्दुत्व का आधारभूत सिद्धान्त यह है कि इस समस्त विश्व-ब्रह्माण्ड में एक ही परम तत्त्व व्याप्त है। इस कारण विश्व में वास्तविक विरोध कहीं नहीं है। आपसी सामञ्जस्य अर्थात् तालमेल के आधार पर ही दुनिया के सारे कामकाज चलते हैं। जो भी संघर्ष दिखाई देता है वह एक परम तत्त्व का ज्ञान न होने के कारण ही है। जैसे-जैसे इस एकत्व की अनुभूति होती चलती है, वैसे-वैसे व्यक्ति क्रमशः परिवार, पास-पड़ोस, समाज, राष्ट्र, मानवता व प्राणिमात्र के साथ एकरूप होता हुआ परमात्म तत्त्व याने परम सुख की ओर बढ़ता जाता है।

एकात्मता का अनुभव करने की सबसे छोटी इकाई है परिवार, जहाँ व्यक्ति अपने स्वयं के सुख-दुःख से ऊपर उठकर परिवार के सुख-दुःख को ही अपना सुख-दुःख मानता है और परिवार के हित के लिए सब प्रकार के कष्ट उठाता व त्याग करता है। हिन्दु विचार इसी परिवार-भावना का विकास करते-करते अन्त में 'वसुधैव कुटुंबकम्' अर्थात् 'सारा संसार ही एक परिवार है' की अनुभूति जगाना चाहता है। संघ का कार्य भी इसी परिवार-कल्पना का विस्तार है। वह मनुष्य को अपने छोटे परिवार के दायरे से ऊपर उठाकर राष्ट्र-परिवार के दायरे तक पहुँचाने में सीढ़ी का काम करता है। वहाँ पहुँचकर व्यक्ति राष्ट्र के सुख-दुःख को अपना सुख-दुःख समझने लगता है और राष्ट्र के हित के लिए सब प्रकार के कष्ट और त्याग करने के लिए सहज तैयार हो जाता है।

संघ के स्वयंसेवकों ने समाज-जीवन के भिन्न-भिन्न क्षेत्रों में भी इसी परिवार-कल्पना का विकास किया है। जैसे, वे औद्योगिक क्षेत्र में पूँजीपति और मजदूरों के ऐसे दो वर्ग

नहीं मानते जिनके हित आपस में टकराने ही हैं । बल्कि, वे पूँजीपति, मजदूर, व व्यवस्थापक, तीनों को एक ही औद्योगिक परिवार के अंग और इस औद्योगिक परिवार को राष्ट्र-परिवार का अंग मानकर चलते हैं । उनका यह उद्घोष प्रसिद्ध ही है कि उद्योगों का श्रमिकीकरण करो, श्रमिकों का राष्ट्रीयकरण करो, राष्ट्र का औद्योगीकरण करो । इसी प्रकार शिक्षा-क्षेत्र में स्वयंसेवकों द्वारा स्थापित संस्था विद्याभारती ने विद्यार्थी, शिक्षक, व्यवस्थापक, और पालक, इन सबको एक शैक्षणिक परिवार का अंग माना है । शासक, कर्मचारी, और प्रजा का भी एक परिवार है । इसी प्रकार अन्य क्षेत्रों में भी इस परिवार-कल्पना को लागू करने के प्रयत्न चले हैं । अनेक विद्वान् कार्यकर्ताओं ने वैचारिक जगत् में संघ की इस विचारधारा की मान्यता स्थापित करने में अनोखी सफलता प्राप्त की है ।

पहले काम, फिर प्रचार

एक और बात बताना आवश्यक है । संघ की स्थापना के बाद शुरू के वर्षों में डाक्टर साहब ने संगठन को प्रसिद्धि से दूर रखा । ऐसी बात तो नहीं है कि डाक्टर साहब प्रसिद्धि का महत्त्व न जानते हों । स्वतन्त्रता-आन्दोलन के काल में सन् १९१९ में 'संकल्प' नामक एक हिन्दी साप्ताहिक के वे सम्पादक थे । बाद में 'सम्पूर्ण स्वतंत्रता' के ध्येय व राष्ट्रवादी विचारों के प्रचार के लिए उनकी मित्र-मंडली ने 'स्वातंत्र्य' नाम का एक दैनिक चलाने की योजना बनायी । धन के अभाव के कारण वह दैनिक केवल एक साल ही चल सका । उस दैनिक में डाक्टर साहब ने धनसंग्रह से लेकर सम्पादन तक के सभी कार्य एक सामाजिक कार्यकर्ता के नाते बिना वेतन आदि लिये किये । इससे यह स्पष्ट हो जाता है कि उन्हें प्रचार-साधनों के सदुपयोग और दुरुपयोग की पूरी कल्पना थी ।

उन्होंने प्रचार के माध्यमों के बारे में सदा राष्ट्रहित की दृष्टि से ही विचार किया । वे मानते थे कि प्रसिद्धि तभी उपयोगी है जब उससे राष्ट्रीय उत्थान के काम का पोषण हो । किसी काम अथवा व्यक्ति को समय से पहले ही प्रसिद्धि मिल जाय तो कार्य को हानि भी पहुँच सकती है । कार्यकर्ता शुरू से ही समाचार-पत्रों के माध्यम से विवाद में उलझने लग जायें और प्रसिद्धि की चाह उनमें पैदा हो जाय तो ठोस काम की ओर पूरा ध्यान नहीं रह पाता । डाक्टर साहब ने संघ-कार्य के आरंभ से ही इस बात की सावधानी बरती कि कार्यकर्ताओं की शक्ति गलत दिशा में खर्च न हो और कहीं प्रसिद्धि को ही वे काम न समझ बैठें । उन्होंने संघ आरम्भ होने के दिनों में ही यह सीख दी थी कि कार्यकर्ता यदि शांतिपूर्वक, बिना आलस्य किये, निःस्वार्थ भाव से और समाज के प्रति असीम अपनेपन के साथ कार्य कर रहा हो तो उसे निंदा-प्रशंसा की चिन्ता नहीं करनी चाहिए । उनका सोचना था कि बिना किसी विकृति के शिकार हुए, योग्य समय पर, योग्य साधनों का सही उपयोग किया जाना चाहिए । इस प्रकार के संयम को वे राष्ट्र-कार्य के लिए आवश्यक मानते थे ।

उन्हें सीमित और उचित मात्रा में मिलने वाली प्रसिद्धि से आपत्ति नहीं थी । ऐसी प्रसिद्धि उत्साह बढ़ाने वाली और कार्य को बल देने वाली हुआ करती है । जब संघ के कोई महत्त्वपूर्ण कार्यक्रम हुआ करते थे, तब उनका समाचार वे समाचार-पत्रों में

भिजवाया करते थे । नागपुर के 'महाराष्ट्र' नामक साप्ताहिक के सम्पादक श्री गोपालराव ओगले से उनके बड़े आत्मीयतापूर्ण संबंध थे और संघ द्वारा भेजे गये उत्सवों के समाचार उस पत्र में ज्यों के त्यों छपा करते थे । जब मध्यप्रदेश सरकार ने सरकारी नौकरों और स्वायत्त संस्थाओं के कर्मचारियों को संघ के कार्यक्रमों में भाग लेने से मना कर दिया था तब 'महाराष्ट्र' साप्ताहिक ने इस मामले में संघ का समर्थन किया था । डाक्टर साहब ने चुनौती दी थी कि सरकार उनके भाषण में तथाकथित हिटलर-प्रशंसा का कोई भी वाक्य ढूँढकर दिखा दे । 'महाराष्ट्र' साप्ताहिक ने उनकी इस चुनौती को प्रमुखता से प्रकाशित किया था ।

प्रचार-माध्यमों का विकास

संघ का कार्य बढ़ता गया, मजबूत होता गया । आगे चलकर श्री गुरुजी के कार्यक्रमों में जब लोग बड़ी संख्या में आने लगे, तब संघ को अपने आप ही प्रसिद्धि मिलने लगी । पत्रकार-सम्मेलन होने लगे और श्री गुरुजी द्वारा दिये गये वक्तव्यों व अनेक प्रश्नों पर दिये गये उनके उत्तरों को राष्ट्रीय स्तर पर महत्त्व प्राप्त हुआ । १९७५-७६ के आपात्काल के बाद तो संघ पूरी तरह प्रकाश में आ गया और संघ के संबंध में उल्टी-सुल्टी चर्चाएँ समाचारपत्रों का रोज का विषय बन गयीं । देशी-विदेशी पत्रकारों में सरसंघचालक से मिलने और उनकी भेंटवार्ता प्राप्त करने की तो अब होड़ चलने लगी । संघ का यह कार्य, जो ख्याति से दूर रहकर किया जा रहा था, श्री गुरुजी के विलक्षण व्यक्तित्व और १९४८ में संगठन पर लगाये गये प्रतिबन्ध के कारण प्रसिद्धि में आया । १९७५-७७ में संघ ने आपात्काल की परिस्थितियों से राष्ट्र और लोकतंत्र को बचाने का विलक्षण कर्तृत्व प्रकट किया । उसके कारण उसकी प्रसिद्धि दिनोंदिन बढ़ती गयी । संघ अब एक देशव्यापी संगठन हो चुका है । अब इसकी उपेक्षा नहीं की जा सकती । यही कारण है कि समाचार-पत्रों में संघ लगातार चर्चा का विषय बना रहता है । जहाँ तक सरकारी प्रचारतंत्र की बात है, उसके साथ तो संघ का अब भी छत्तीस का सम्बन्ध चला आ रहा है ।

सन् १९४८ में संघ-विरोधी दुष्प्रचार की आंधी इतनी तेज़ थी कि भारत की संसद् में संघ के लिए न्याय की गुहार लगाने वाला एक भी माई का लाल खड़ा नहीं हुआ । किसी भी समाचार-पत्र को संघ के वक्तव्य छापने का साहस नहीं होता था । तब संघ के कार्यकर्ताओं ने पत्रकारिता के क्षेत्र में स्वयं प्रवेश करना प्रारंभ किया । देश में स्थान-स्थान पर जनभाषाओं में अनेक साप्ताहिक पत्र प्रारंभ किये गये ताकि संघ का पक्ष लोग समझ सकें और संघ के नेताओं के वक्तव्य बिना तोड़े-मरोड़े लोगों के सामने आ सकें । दिल्ली से अंग्रेजी में 'आर्गेनाइजर' सन् ४७ में ही प्रारंभ हो चुका था और लखनऊ से हिन्दी में 'राष्ट्रधर्म' मासिक निकल रहा था । १९४८ में लगाये गये, प्रतिबंध के दिनों में लखनऊ से ही दैनिक 'स्वदेश' और साप्ताहिक 'पाञ्चजन्य' निकाले गये । क्षेत्र-क्षेत्र में चलाये गये इन साप्ताहिकों व कुछ स्थानों से प्रारंभ हुए दैनिकों ने बड़ी महत्त्वपूर्ण भूमिका निभायी । सरकार द्वारा इन समाचारपत्रों के मुँह बन्द करने के प्रयत्न भी हुए, किन्तु उसके प्रयत्न सफल नहीं हो सके । उस समय चलाये गये अनेक पत्र आज भी बराबर चल रहे हैं ।

श्री बालासाहेब देवरस की प्रेरणा से एक नयी लिमिटेड कंपनी का निर्माण किया गया जिसने प्रतिबंध-काल के आसपास ही नागपुर के लोकप्रिय 'तरुण भारत' को खरीदा। बाद में उसके संस्करण पुणे, मुंबई व सोलापुर से भी निकलने लगे। इसी प्रकार इन्दौर के 'स्वदेश' और नागपुर के 'युगधर्म' के भी अनेक संस्करण ग्वालियर, भोपाल, रायपुर, जबलपुर आदि स्थानों से निकलने लगे। इस समय भारत की प्रायः सभी प्रमुख भाषाओं में स्वयंसेवकों द्वारा दैनिक, साप्ताहिक अथवा मासिक निकाले जा रहे हैं। आज संघ पर किये जाने वाले झूठे आरोपों का उत्तर इन पत्रों द्वारा अपने आप मिल जाता है। इनके कारण, भिन्न-भिन्न क्षेत्रों में कार्य कर रहे समविचारी संगठनों के कार्यक्रमों, आन्दोलनों और उनकी विचारधारा को भी स्वाभाविक रूप से अच्छी प्रसिद्धि मिलने लगी है। संघ के मित्र ही नहीं, अपितु उसके विरोधी भी इन पत्रों के माध्यम से संघ का मत जानने के लिए उत्सुक रहते हैं।

तेजोमय प्रतिबिंब तुम्हारे

डाक्टर साहब ने संघरूपी वटवृक्ष का जो बीज बोया था, उसी के विकास और विस्तार की यह गाथा है। बीज में सारा वृक्ष समाया रहता है और वह धीरे-धीरे प्रकट होता जाता है। जब तक उसकी जड़ें धरती में गहराई तक न पहुँच जायें और तना मजबूत न हो जाये, तब तक उसको पालना-पोषना और उसकी रक्षा करना आवश्यक होता है। कुछ समय बाद वे जड़ें स्वयं ही भूमि से जीवनरस प्राप्त करने लगती हैं। यह जीवनरस ही सारे वृक्ष को हराभरा रखता है। बीज के गुण ही वृक्ष के अंग-प्रत्यंग में प्रकट होते हैं। उसी नियम के अनुसार, संघ के कार्यकर्ता किसी भी क्षेत्र में क्यों न रहें, देश में रहें या विदेश में, कुछ स्थायी संस्कार लेकर ही वहाँ विचरण करते हैं। वे संस्कार उनके सम्पूर्ण जीवन और व्यवहार में प्रतिबिंबित होते रहते हैं।

संघ के कार्यकर्ता का जीवन जिन संस्कारों से ढलकर तैयार होता है, उनमें से प्रमुख ये हैं : हिन्दुस्थान पर उसका प्राणों से भी अधिक प्रेम रहता है, धर्म और संस्कृति की रक्षा करने की उसकी प्रबल इच्छा रहती है, समाज पर आये संकट उसे स्वयं अपने ऊपर आये संकट लगते हैं और हिन्दु समाज में वह किसी को ऊँचा-नीचा नहीं मानता। वह सबको समान मानकर सबके लिए असीम प्रेम हृदय में धारण करता है। राष्ट्र का काम करते समय इसका विचार वह नहीं करता कि इससे 'मुझे क्या मिलेगा ?' वह अपने आपको तन-मन-धनपूर्वक उस काम में झौंक देता है। वह अनुशासित रहता है और व्यक्तिगत अहंकार को अपने पास भी नहीं फटकने देता। अपना घर-द्वार संभालते हुए भी, संघ-कार्य को वह जीवन का प्रधान कार्य मानता है।

डाक्टर साहब ने जब दैनिक शाखा शुरू की थी, तब उसके पीछे हेतु यही था कि हिन्दु समाज में ये और इन जैसे अन्य सद्‌गुणों का पोषण हो और वे दुर्गुण दूर हों जिनके कारण समाज टूटता व दुर्बल होता है। आज संघ के कितने ही कार्यकर्ता कितने भी प्रकार के कार्य क्यों न कर रहे हों, यह आग्रह पहले के समान ही बना हुआ है कि संघ की शाखाओं में सभी स्तरों के हिन्दुओं को आना ही चाहिए और शाखाओं का विस्तार देश के हर भाग में होना ही चाहिए क्योंकि उपर्युक्त गुणों वाले लोग शाखा के नित्य-कार्यक्रमों द्वारा ही

तैयार होते हैं । यदि संघ के कार्यकर्ताओं में उपर्युक्त गुण न हों व सार्वजनिक जीवन की प्रचलित बुराइयाँ उनमें भी दिखाई देने लगें तो संघ का मूल उद्देश्य ही विफल हो जाता है ।

संघ के जो कार्यकर्ता आज देश-विदेश में फैले हुए हैं, उनमें से ऐसे बहुत ही थोड़े हैं जिन्होंने डाक्टर साहब को देखा है । किन्तु उनके मन में डाक्टर साहब की प्रतिमा विराजमान है और उन्होंने उनके गुणों का वर्णन ज्येष्ठ कार्यकर्ताओं के मुख से सुना है । उनके छोटे-मोटे चरित्रग्रंथ भी उन्होंने पढ़े हैं और उनके लिए यह समझना कठिन नहीं होता कि संघ और डा० हेडगेवार इतने एकरूप हो गये थे कि उन्हें अलग-अलग करके देखना ही संभव नहीं है । डाक्टर साहब ने संघ-स्थापना से पूर्व के अपने सार्वजनिक जीवन के अनुभवों और चिन्तन से कुछ निष्कर्ष निकाले थे । संघ का कार्य करते समय उन्होंने उन बातों का ध्यान रखा और स्वयंसेवकों की छोटी-बड़ी आदतों को तदनुसार ढाला । एक विशाल प्राचीन राष्ट्र के असंगठित, थके-हारे और आत्मविस्मृत समाज को इस प्रकार संगठित करने का प्रयोग इतिहास में पहली बार देखा गया । जिस महापुरुष ने अपने कर्तृत्व के बल पर इस कार्य को सफल कर दिखाया, उसके प्रति कृतज्ञता का भाव मन में धारण कर उसके कार्य को आगे बढ़ाना प्रत्येक हिन्दु का स्वाभाविक कर्तव्य है । संघ ने भारत को परम वैभवशाली बनाने का लक्ष्य अपनी आँखों के सामने रखा है । उसे साकार करने के काम में सहयोग देना हिन्दुमात्र और राष्ट्र के लिए परम कल्याणकारी होगा ।

श्वास-श्वास में संघ

डाक्टर साहब के देहावसान के बाद श्री गुरुजी ने उनके जीवन-कार्य का मर्म समझाने के लिए जगह-जगह अनेक भाषण दिये और डाक्टर साहब के संबंध में अपने स्वयं के अनुभव भी सुनाये । श्री गुरुजी कोई साधारण व्यक्ति नहीं थे । उनके जीवन मे रामकृष्ण-विवेकानन्द की परम्परा स्वामी अखंडानन्द जी के माध्यम से उतरी थी । अध्यात्म-साधना के मार्ग पर उन्होंने इतनी प्रगति की थी कि आत्मानंद में रमते हुए वे कहीं भी बस सकते थे । किन्तु ऐसे आध्यात्मिक व्यक्तित्व को भी डाक्टर साहब ने पूरी तरह जीत लिया था और अपने अतुल प्रभाव से पूरी तरह संघमय बना दिया था । यह कैसे संभव हो सका ?

इसका उत्तर श्री गुरुजी ने ही दिया है । उन्होंने कहा है कि राष्ट्र और समाज के साथ डाक्टर साहब इतने एकरूप हो गये थे कि उनका अपना कोई अलग अस्तित्व ही नहीं बचा था । हिन्दु समाज ही उनकी दृष्टि में भगवान् का रूप था और इस समाजरूपी भगवान् के प्रति उन्होंने अपना सब कुछ अर्पित कर दिया था । उनके शरीर के कण-कण में राष्ट्र रम गया था । अलग से 'मैं' बचा ही नहीं था । भक्ति की यह ऊँची अवस्था उन्होंने प्राप्त की थी ।

जब सन् १९३९ में डाक्टर साहब देवलाली में 'डबल न्यूमोनिया' से बीमार हुए थे, उस समय श्री गुरुजी उनकी सेवा में थे । अत्यधिक ज्वर में मनुष्य सुध-बुध खो बैठता है और चाहे जो बड़बड़ाने लगता है । ऐसे समय वे बातें बाहर निकला करती हैं जो मन में गहराई तक पैठी होती हैं । श्री गुरुजी बताते थे कि बेहोशी की अवस्था में राष्ट्र और

समाज सम्बन्धी बोल ही डाक्टर साहब के मुँह से निकला करते थे । व्यक्तिगत दुःख, मान-अपमान, लाभ-हानि आदि के संबंध में एक अक्षर भी उनके मुँह से कभी न हीं निकला । विचार, उच्चार तथा आचार की सम्पूर्ण एकता डाक्टर साहब के जीवन में प्रकट हुई । छुटपन से लेकर अन्तिम क्षण तक पूरी तरह स्वार्थरहित और राष्ट्र के प्रति समर्पित जीवन जीने वाले महापुरुष—डाक्टर साहब—सहज ही श्री गुरुजी के पथ-प्रदर्शक हो गये । श्री गुरुजी का कहना था कि ऐसे महापुरुष की शरण में जाना बड़े आनंद और सौभाग्य की ही बात हुआ करती है ।

समाजरूपी भगवान्

यदि श्री रामकृष्ण-विवेकानन्द की परम्परा ने श्री गुरुजी को भक्ति, साधना, आत्मदर्शन, और सेवा की प्रेरणा दी, तो डाक्टर साहब ने दैनंदिन जीवन में समाजरूपी देवता की उपासना का मार्ग दिखाया । इस संगम के कारण ही संगठन के क्षेत्र में श्री गुरुजी का नेतृत्व निखर उठा । श्री गुरुजी सरीखे निर्विवाद आध्यात्मिक महापुरुष के सामाजिक क्षेत्र में उतरने के कारण भारत के परम्परागत धार्मिक क्षेत्र के अग्रगण्य महात्माओं को समाजमुखी बनाना कठिन नहीं रह गया । उन्हें हिन्दु समाज के सुख-दुःख बताकर समाज-संगठन के काम के लिए एकत्रित करना सरल हो गया । उनके मुख से छुआछूत सरीखी कुप्रथाओं को निराधार घोषित करवाया जा सका और उसके उन्मूलन के लिए उनका सहयोग प्राप्त होने लगा । इस प्रकार हिन्दु-जागरण का कार्य तेजी से आगे बढ़ाने में उन महात्माओं का सहयोग मिलने लगा । श्री गुरुजी का प्रचुर पत्र-व्यवहार और व्यापक लोक-सम्पर्क सभी को अचम्भे में डालने वाला था । इसमें तनिक भी संदेह नहीं है कि श्री गुरुजी के कार्य से डाक्टर साहब की आत्मा को पूरा समाधान हुआ होगा ।

डाक्टर साहब की विचारधारा को श्री गुरुजी ने कृतिरूप में परिणत किया, उन विचारों का सभी अंग-उपांगों सहित व्यावहारिक रूप प्रस्तुत किया तथा उनका तात्त्विक आधार भी सुदृढ़ बनाया । जीवन के प्रत्येक क्षेत्र व विषय के संबंध में अधिकारवाणी से और स्पष्टता के साथ मौलिक विचार व्यक्त करने वाला श्री गुरुजी सरीखा नेता विरला ही होता है । डाक्टर साहब द्वारा श्री गुरुजी का चयन राष्ट्र को उनकी एक महान् देन थी जो इतिहास के ऊपर एक अमिट छाप डालने वाली सिद्ध हुई । डाक्टर साहब के संबंध में असीम श्रद्धा सँजोकर उनके काम को आगे बढ़ाने के लिए दिन-रात कष्ट उठाने वाले श्री गुरुजी तो महान् थे ही, संघ को श्री गुरुजी सरीखा नेतृत्व प्रदान कर उनके हाथों महान् कार्य करा लेने वाले डाक्टर साहब को उनसे भी महान् मानना होगा ।

राष्ट्रहित ही कसौटी

इन दो महापुरुषों की ४८ वर्षों की तपस्या का बल लेकर राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ की यात्रा जारी है, संघ इस बात पर बड़ी बारीकी से विचार करता है कि इस देश में हिन्दु समाज को उसका न्यायपूर्ण स्थान दिलाने के लिए क्या किया जाना चाहिए । उन

संकल्पनाओं को पूरी स्पष्टता और गहराई के साथ सम्पूर्ण हिन्दु समाज तक पहुँचाने का कार्य बड़े व्यापक स्तर पर चल रहा है । एक-एक कार्यक्रम को हाथ में लेकर उसे सफलता तक पहुँचाया जा रहा है । समाज की कमियों को दूर करने का तथा उसकी भौतिक और मानसिक दुर्बलता समाप्त करने का विराट् यज्ञ निरन्तर चल रहा है । देश में चलने वाली सारी राजनीतिक और अन्य गतिविधियों की ओर भी संघ पूरी तरह सजग है । राष्ट्रीय हित को हानि पहुँचाने वाली घटनाओं व सरकारी नीतियों के संबंध में संघ जनता को सदा सावधान करता रहता है ।

संघ ने राष्ट्र को समय-समय पर इसकी कल्पना अत्यन्त स्पष्ट शब्दों में दी है कि 'अल्पसंख्यकों' के संबंध में अपनायी गयी सरकारी नीति से क्या-क्या खतरे उत्पन्न हो रहे हैं। राष्ट्रीय एकता और अखण्डता की रक्षा के लिए संघ इन बातों पर बार-बार बल देता रहता है कि अल्पसंख्यक अधिकार आयोग समाप्त कर उसकी जगह मानव अधिकार आयोग का निर्माण किया जाय, काश्मीर संबंधी धारा ३७० रद्द की जाय, विदेशी ईसाई मिशनरियों को देश से निकाल बाहर किया जाय, ईसाइ चर्च व मुस्लिम संस्थाओं को धर्मान्तरण के लिए विदेशों से प्राप्त हो रही करोड़ों की धनराशि पर पूरी तरह रोक लगायी जाय । संघ ने बड़े स्पष्ट शब्दों में देशवासियों को यह चेतावनी दी है कि हिन्दु जहाँ अल्पसंख्यक हो जाता है वह प्रदेश देश से कट जाता है, इसलिए छल-कपट द्वारा या बलात् किये जाने वाले धर्मान्तरण पर कानूनन प्रतिबन्ध लगाया जाय ।

पंजाब के प्रश्न पर संघ की भूमिका पूरी तरह राष्ट्रीय है । संघ ने कहा है कि सिख हिन्दु समाज का अंग हैं और पंजाब में फैली हुई अशान्ति कुर्सी पाने के लिए स्वार्थी नेताओं द्वारा की जा रही आपाधापी का परिणाम है । संघ केशधारी सिखों सहित सभी हिन्दुओं में यह जागृति उत्पन्न करने का प्रयास कर रहा है । साथ-साथ हिन्दु समाज की कुरीतियों और दुर्बलता पैदा करने वाले दोषों को दूर करने के लिए भी संघ के कार्यकर्ता जुटे हुए हैं । इधर कुछ वर्षों से हिन्दु-जागृति के लिए लगातार किये जा रहे इन प्रयत्नों का परिणाम दिखाई देने लगा है । डाक्टर साहब ने जिस लक्ष्य को लेकर कार्य प्रारंभ किया था, उसे युगानुकूल पद्धति से पूर्णता की ओर ले जाने का यह सारा प्रयास है । डाक्टर साहब की इच्छा थी कि संघ-कार्य देशव्यापी बने ; उस लक्ष्य को सामने रखकर संघ के कार्यकर्ता ग्रामांचलों एवं वनांचलों में तेजी से फैल रहे हैं । संघ-कार्यकर्ताओं द्वारा समाज के पुनरुत्थान हेतु चलाये जा रहे अनेकानेक संगठन भी अपने-अपने कार्य को देशव्यापी बनाने में जुटे हुए हैं ।

हिन्दु मत का अंकुश हो

राजनीतिक क्षेत्र में कुर्सी के लालच के कारण जन्मी विकृतियाँ राष्ट्र के लिए अत्यन्त हानिकारक सिद्ध हो रही हैं । एक ओर भ्रष्टाचार, विलासी जीवन की लत, गुटबाजी व संकुचित निष्ठाएँ राष्ट्र को खोखला बना रही हैं तो दूसरी ओर वोटों के लालच में तथाकथित अल्पसंख्यक समाजों के तलुवे सहलाने की प्रवृत्ति राष्ट्र के लिए बड़े संकट का कारण बन रही है । अल्पसंख्यकों के थोक वोटों की ओर ललचायी दृष्टि से देखने वाले कुछ नेताओं को इस बात की तनिक भी चिन्ता होती दिखाई नहीं दे रही है कि

अल्पसंख्यकों के तुष्टीकरण के कारण राष्ट्रीय हित और हिन्दुहित को कितनी चोट पहुँच रही है और उसके कारण राष्ट्र की सुरक्षा तथा अखंडता के लिए कैसे-कैसे खतरे उत्पन्न हो रहे हैं । संघ की दृष्टि में इसका कारण यह है कि 'हिन्दु मत' नाम की कोई शक्ति इन नेताओं को आज दिखाई नहीं देती जो उनके मन में भय उत्पन्न कर सके । यदि देश के ८५ प्रतिशत हिन्दुओं को उनके मतों की शक्ति-का ज्ञान कराया जा सके और उस आधार पर उनको संगठित किया जा सके, तभी हिन्दुहित-विरोधी राजनीतिक दलों की हिन्दु-हितों की उपेक्षा न करने के लिए बाध्य किया जा सकेगा । उसके बाद ही राजनीतिक क्षेत्र में व्याप्त तुष्टीकरण का रोग दूर हो सकेगा । संघ की मान्यता है कि लोकतंत्र में उपलब्ध प्रत्येक मंच का उपयोग हिन्दु-मत को निश्चित दिशा देने हेतु किये जाने की आवश्यकता है और उसे यह भी लगता है कि समविचारी संस्थाओं के सहयोग से 'हिन्दु मत' का देश में सब स्तरों पर होने वाले चुनावों पर निर्णायक प्रभाव डालना आवश्यक है । ऐसा होने पर कम्युनिस्टों को भी अपनी भाषा बदलनी पड़ती है, यह बात केरल के गत चुनावों ने स्पष्ट कर दी है ।

हिन्दु जाग रहा है !

संघ के कार्यकर्ता संगठन के कार्य से देश भर में भ्रमण करते रहते हैं । उनके माध्यम से देश के कोने-कोने से संगठन का सजीव संबंध बना रहता है और राष्ट्र-जीवन को प्रभावित करने वाली सब प्रकार की घटनाओं की नवीनतम जानकारी प्राप्त होती रहती है । उसके आधार पर राष्ट्र के लिए हानिकारक प्रवृत्तियों व शक्तियों को समय से पहचानने में तथा उनके प्रति समाज व शासन को सतर्क करने में संघ को कठिनाई नहीं होती । संघ देश के जागरूक प्रहरी की भूमिका निभा रहा है । देश के भिन्न-भिन्न भागों में ईसाइयों और मुसलमानों की आक्रामक कार्यवाहियों की तथ्यपूर्ण जानकारी मिलने के कारण हिन्दु समाज को समय से सजग कर देना संघ के लिए सरल है । समाज में अब इतनी जागृति आ चुकी है कि वह आपसी भेदभाव भुलाकर स्वयंस्फूर्ति से उनका सामना करने के लिए खड़ा हो जाता है । जाति-पाँति, पंथ-भाषा आदि के भेद हिन्दुत्व की विशाल भावना के सामने लुप्त हो जाते हैं । संघ और विभिन्न क्षेत्रों के कार्यकर्ता ऐसी ही मानसिकता तैयार करने का काम कर रहे हैं । समाज की जागृति और प्रतिकार की सिद्धता दिनोंदिन बढ़ती चल रही है । इससे जिनके हितों को धक्का पहुँचता है, वे चिढ़कर संघ पर चोट भी करते हैं । उस चोट को पचाकर, जहाँ आवश्यक हो वहाँ जैसे को तैसा उत्तर देते हुए, संघ-शक्ति अपने मार्ग पर आगे बढ़ रही है । इस संबंध में दक्षिण भारत में स्वयंसेवकों द्वारा चलाये जा रहे हिन्दु मुन्नणी नामक संगठन को जो जन-समर्थन मिल रहा है वह अत्यन्त आशादायक है । उससे यह विश्वास पुष्ट हुआ है कि यदि योग्य दिशा में प्रयत्न किये गये और हिन्दु बान्धवों को परिस्थिति की सही जानकारी दी गयी तो वे संगठित होकर आक्रामक कार्यवाहियों को सफलतापूर्वक रोक सकते हैं। हिन्दुओं में अकेलेपन की भावना तेजी से घट रही है । संघ ऐसी ही परिस्थिति का तो निर्माण करना चाहता है कि देश भर में कोई भी हिन्दु अपने आपको असहाय अनुभव न करे । तदर्थ, संघ प्रारंभ से ही यह आवश्यक मानता रहा है कि समान विचारों की समस्त संस्थाएँ और कार्यकर्ता हिन्दु समाज में ऐसा जागरण उत्पन्न करने हेतु आपसी सहयोग से काम करें और ऐसी स्थिति निर्मित करें कि हिन्दु समाज को कुतरने की

किसी की हिम्मत ही न हो। उसे इस कार्य में सफलता मिल रही है । इस दिशा में और तेजी से काम करने की आवश्यकता है ।

जियेंगे तो स्वाभिमान से

अन्यान्य मतावलम्बियों द्वारा हिन्दुओं के उत्सवों व जुलूस आदि कार्यक्रमों के अवसर पर किये जाने वाले उपद्रवों और उनके तीर्थ-स्थलों पर गैर-कानूनी अतिक्रमणों के संबंध में समाचार आते रहते हैं । सरकार को गणेशोत्सव, रथयात्रा, हिन्दु देवी-देवताओं के उत्सवों और शोभायात्राओं के समय शांति व व्यवस्था बनाये रखना समस्या लगती है । तनाव दूर करने की शासन की पद्धति भी बड़ी विचित्र है । वह हिन्दुओं से अपेक्षा करता है कि वे जुलूस न निकालें, अमुक-अमुक मार्ग से न जायें, शंख-घंटे आदि न बजायें, देवी-देवताओं और महापुरुषों का जय-जयकार न करें । बंधन उन पर ही लगाये जाते हैं । अनुभव बताता है कि ऐसे अन्यायों के विरुद्ध यदि स्थानीय हिन्दु ताल ठोककर खड़े हो जाते हैं और गुण्डागर्दी के आगे झुकना अस्वीकार कर देते हैं, तो ही उन्हें न्याय मिल पाता है और उनकी भावनाओं का सम्मान हो पाता है ।

संघ-निर्माता को कायरता से बड़ी चिढ़ थी । वे कभी किसी भी धमकी के आगे झुके नहीं । गाय को काटने के लिए ले जाना वाला कसाई हो, पराधीन प्रजा से सलामी की इच्छा रखने वाला ब्रिटिश अधिकारी हो, बेड़ी डालने की धमकी देने वाला पुलिस पहरेदार हो, अथवा घर पर पत्थर फैंकने वाला गुंडा हो, उन्होंने सर्वत्र अपनी जुझारू वृत्ति का ही परिचय दिया । तनाव के कितने ही प्रसंगों पर वे अन्याय का विरोध करने के लिए स्वयं आगे आये । उनका कहना था कि जीवित समाज वही है जिसमें माताओं-बहिनों और मानबिन्दुओं की स्वाभाविक रूप से रक्षा हुआ करती है । समाज में ऐसी ही जीवन्तता लाने के लिए संघ के कार्यकर्ता जुटे हुए हैं । हिन्दु समाज जैसे-जैसे जाग्रत होकर स्वाभिमान के साथ खड़ा होगा, वैसे-वैसे संघर्ष के अवसर अधिक आयेंगे क्योंकि हिन्दुओं की तेजस्विता देखने की अन्य लोगों को आदत ही नहीं है । अब तक तो उन्होंने संघर्ष के अवसरों पर डरपोक नेता और घर में घुसकर दरवाजे बन्द कर लेने वाली जनता ही देखी थी । किन्तु अब दृश्य बदल गया है । संघ के कार्यकर्ता समाज के जागरूक घटक के नाते उसका पुरुषार्थ जगाते हैं । यह उनके 'वीरव्रत' के अनुरूप ही है ।

इस समय हमारे हिन्दु समाज और राष्ट्र को दुर्बल और जर्जर करने के लिए अनेक शक्तियाँ काम कर रही हैं । उनका एक प्रयत्न यह होता है कि हिन्दु समाज के भीतर झगड़े करवाये जायें । जान-बूझकर झूठा और विकृत प्रचार कर किसी समूह की भावना को वे भड़काते हैं । इसके लिए उन्हें विदेशों से भरपूर पैसा मिलता है । यह अलग से बताने की आवश्यकता नहीं है कि इसके पीछे राजनीतिक मंसूबे भी रहते हैं । झुग्गी-झोपड़ियों में तथा वनांचल में रहने वाले हमारे बन्धुओं में उनकी उपेक्षित स्थिति, उनके प्रति हुए विषमतापूर्ण व्यवहार तथा समाज में फैली भीषण गरीबी और बेरोजगारी की बातों को लेकर असन्तोष भड़काया जाता है । दूसरी ओर धन का लालच

दिखाकर उन्हें राष्ट्र की मुख्य धारा से काटने का योजनाबद्ध प्रयास चल रहा है। मुसलमानों द्वारा हिन्दु समाज के इस गरीब वर्ग को अपने साथ जोड़कर एक राजनीतिक दल भी खड़ा किया जा रहा है। इसकी आड़ में अलगाववाद व परस्पर विद्वेष का तूफान खड़ा करने का प्रयत्न है। इसका सामना करने के लिए संघ धार्मिक नेताओं, विद्वानों व निःस्वार्थ समाजसेवकों के सहयोग से राष्ट्र-जीवन में समरसता व आत्मीयता भरने का देशव्यापी प्रयत्न कर रहा है। यह अनुभवसिद्ध है कि हिन्दुत्व के आधार पर परस्पर विश्वास-निर्माण करने के प्रयत्न सफल हो रहे हैं और इस कार्य में समाज का भी भरपूर सहयोग मिलता है।

कोई हिन्दु छूटे नहीं

डाक्टर साहब वास्तव में जैसा चाहते थे, वैसी ही इस सारे कार्य की दिशा है। संघ का विचार सम्पूर्ण हिन्दु समाज को साथ लेकर चलने का है। किसी को उसमें से अलग नहीं किया गया है। डाक्टर साहब ने यह भूमिका बड़े ही स्पष्ट शब्दों में संघ के कार्यकर्ताओं को समझायी थी। उनका कहना था—"हमारा कार्य सम्पूर्ण हिन्दु समाज के लिए होने के कारण उसके किसी भी अंग की उपेक्षा करने से काम नहीं चलेगा। समस्त हिन्दु बांधवों से, फिर वे किसी भी श्रेणी के क्यों न माने जाते हों, हमारा व्यवहार समान रूप से प्रेम का होना चाहिए। किसी भी हिन्दु बंधु को निम्न समझकर दुतकारना महापाप है। कम से कम संघ के स्वयंसेवकों के मन में तो इस प्रकार की संकुचित कल्पना होनी ही नहीं चाहिए। भारत से प्रेम करने वाले प्रत्येक हिन्दु से हमारा व्यवहार भाई जैसा ही होना चाहिए। हमारा व्यवहार यदि आदर्श हो तो हमारे सारे हिन्दु बंधु हमारी ओर आकर्षित हुए बिना नहीं रहेंगे।" इसी अनमोल मार्गदर्शन के अनुसार संघ समाज में समरसता बढ़ा रहा है।

डाक्टर साहब संघ को एक जीवमान् संगठन बताया करते थे। जीवमान् का अर्थ होता है जीवनरस ग्रहण कर स्वाभाविक रूप बढ़ाने वाला। संघ का चिन्तन कम्युनिस्ट, इस्लामी अथवा ईसाई मतों के समान किसी एक साँचे में बंद नहीं किया गया है। संघ ऐसा नहीं मानता कि किसी अवसर या परिस्थिति-विशेष में यदि डाक्टर साहब अथवा श्री गुरुजी ने कोई बात कही थी तो उसको एक बंद पोथी के समान सदैव वैसे ही मानते रहना है और नयी परिस्थितियों में कोई नया विचार करना ही नहीं है। ऐसा संघ का विचार नहीं है। संघ की स्थापना के समय भारत में विदेशियों का शासन था, इसलिए डाक्टर साहब को बड़ी सावधानी से बोलना और व्यवहार करना पड़ता था। यह नहीं कहा जा सकता कि उनके मन में जो कुछ भी रहा होगा उस सबको वे बड़ी स्पष्टता के साथ व्यक्त कर पाये होंगे। जो उस समय प्रकट नहीं किया जा सका, वह अब प्रकट हो सकता है। केवल शब्द पकड़कर बैठना उचित नहीं। इतना मात्र निश्चित है कि डाक्टर साहब ने जो मूलभूत उद्देश्य संघ प्रारंभ करते समय आँखों के सामने रखे और बताये, उनसे संघ सूतभर भी नहीं भटक सकता क्योंकि वे राष्ट्रीय उद्देश्य हैं। संगठन के ध्येय, और उस ओर ही प्रगति का ध्यान पग-पग पर रखना आवश्यक है। किन्तु इन

उद्देश्यों की सिद्धि के लिए अपनाये जाने वाले कार्यक्रमों में लचीलापन रह सकता है। यह विवेक यदि नहीं रहा तो डाक्टर साहब की कल्पना का 'जीवमान् संगठन' नहीं बन सकेगा।

दलगत राजनीति से दूर

डाक्टर साहब ने यह भी कहा था कि परतंत्र राष्ट्र के लिए स्वतंत्रता-प्राप्ति के अतिरिक्त और कोई राजनीति नहीं हो सकती। इसीलिए उनकी आँखों के सामने हिन्दु समाज की स्वतंत्रता-प्राप्ति के लिए समर्थ संगठन खड़ा करना प्राथमिक महत्त्व का लक्ष्य था। १५ अगस्त १९४७ को राजनीतिक स्वतंत्रता मिली और भारतभूमि से अंग्रेजों की प्रत्यक्ष सत्ता समाप्त हो गयी। अपनों के ही हाथों देश के शासन की बागडोर आ गयी। देश में लोकतंत्र की स्थापना हुई और उसके साथ ही दलों की चुनावी राजनीति भी आरंभ हो गयी। स्वभावतः उस समय सबके सामने हिन्दुस्थान की भावी रीति-नीति और सर्वांगीण प्रगति के मार्ग-निर्धारण का प्रश्न भी उपस्थित हुआ। श्री गुरुजी ने स्पष्ट रूप से कहा कि संघ चुनावी राजनीति में भाग नहीं लेगा, वरन् राष्ट्र के संगठन, हिन्दु जीवन के आदर्शों की स्थापना और डाक्टर साहब की समर्थ हिन्दु राष्ट्र की कल्पना को साकार करने के लिए काम करता रहेगा। साथ ही वे कहा करते थे कि सदैव जिस राष्ट्रहित को सामने रखकर राजनीति की जानी चाहिए, संघ उस राष्ट्रहित को कभी आँखों से ओझल नहीं होने देगा और तदनुसार राजनीति के संबंध में अपना मत प्रकट करता रहेगा।

संस्कृति राष्ट्र की आत्मा हुआ करती है। इसलिए डाक्टर साहब स्वतंत्रता का अर्थ समझाते हुए आग्रहपूर्वक कहा करते थे कि स्वतंत्र हिन्दुस्थान में हिन्दु संस्कृति का पोषण और संवर्धन होना ही चाहिए। किन्तु राजनीतिक स्वतंत्रता प्राप्त होने के बाद हिन्दुत्व पर साम्प्रदायिकता का आक्षेप लगा दिया गया और हिन्दुत्व-विरोधी नीतियों को योजनापूर्वक स्वीकार किया जाने लगा। श्री गुरुजी ने इस नीति के घातक परिणामों के प्रति समय-समय पर राष्ट्र को सचेत किया। भारत की एकता और अखंडता को बनाये रखने के लिए सरकार को उन्होंने खुले मन से सहयोग दिया। सन् १९४८ में गांधी जी की हत्या के बाद राष्ट्र को आपसी कलह से बचाने के लिए उन्होंने स्वयंसेवकों को सब प्रकार का अन्याय सहकर भी शांत रहने का परामर्श दिया और 'वयं पंचाधिकं शतम्' ('हम एक सौ पाँच हैं') के सूत्र का स्मरण कराया। चीन और पाकिस्तान के आक्रमणों के समय संघ का व्यवहार इसी के अनुरूप हुआ है।

खंडित भारत में काम करते हुए संघ ने अखंड भारत की बात नहीं भुलायी है। वह इसका प्रयत्न करता रहता है कि सारे राष्ट्र को उसका स्मरण बना रहे और देश को पुनः अखंड करने की मातृभक्तिपूर्ण आकांक्षा से सबके अन्तःकरण परिपूरित रहें। डाक्टर साहब के समय में ही पाकिस्तान का नारा लगने लगा था और उन्होंने उससे सावधान रहने की चेतावनी भी दी थी। उनके मन को खंडित भारत की स्वतंत्रता की कल्पना भी स्वीकार्य नहीं हो सकती थी। अतः जब तक उनकी कल्पना की स्वतंत्रता को हम स्थापित नहीं कर पाते, तब तक उनकी आत्मा को भला शांति कैसे मिलेगी? इस लक्ष्य

की प्राप्ति के लिए डाक्टर साहब द्वारा निर्मित संघ बद्ध-परिकर है और उस हेतु आवश्यक शक्ति-निर्माण करने के लिए कमर कसकर खड़ा है ।

विश्व-कल्याण की कामना

डाक्टर साहब के समय से ही संघ पर मुस्लिम-द्वेष और आक्रामकता का आरोप लगाया जाता रहा है । इन आरोपों के उन्होंने अनेक बार उत्तर भी दिये थे । डाक्टर साहब की वैचारिक भूमिका की झलक सन् १९२० के नागपुर कांग्रेस अधिवेशन में उनके प्रयत्नों से प्रस्तुत हुए साम्राज्यवाद-विरोधी प्रस्ताव में देखने को मिलती है जिसका उल्लेख पहले आ चुका है । उस प्रस्ताव से यह स्पष्ट पता चलता है कि हिन्दु कभी भी दुनिया के अहित का विचार नहीं कर सकता, वरन् सदा उसके कल्याण का ही विचार करता है । डाक्टर साहब द्वारा रखे गये उस प्रस्ताव और संघ की स्थापना के बाद उनके द्वारा प्रस्तुत की गयी संघ की भूमिका से राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ के 'वैश्विक मिशन' की संगति बिल्कुल ठीक बैठती है ।

श्री गुरुजी ने देश स्वाधीन होने के बाद संघ के इस जीवनोद्देश्य के संबंध में अनेक बार बहुत कुछ बताया । हिन्दुओं के श्रेष्ठ तत्त्वज्ञान और जीवन-दर्शन के आधार पर दुनिया की सब समस्याओं को हल करने का मार्ग मिल सकता है । किन्तु हिन्दुस्थान की बात दुनिया तभी सुनेगी जब हिन्दु समाज पहले शक्तिशाली बनेगा और आध्यात्मिक जीवनादर्शों को अपने जीवन में प्रकट करेगा । दुनिया में दुर्बल, असंगठित और स्वाभिमानशून्य राष्ट्र के शब्द की कोई कीमत नहीं होती । मानवमात्र के लिए कल्याणकारी और सुख-शांति का सच्चा मार्ग दिखाने वाला अध्यात्म-विचार संसार के लिए सदा उपयोगी रहेगा । हिन्दु राष्ट्र का यह जीवन-लक्ष्य ईश्वरीय योजना है । श्री गुरुजी कहा करते थे कि हिन्दु संगठन का उच्चतम लक्ष्य यही हो सकता है कि भगवान् द्वारा भारत को सौंपे गये इस चिरन्तन कार्य को पूरा करने की क्षमता राष्ट्र और समाज में निर्मित हो । इस प्रकार एक अति महान् उद्देश्य उन्होंने हिन्दु युवकों के सामने रखा और इस कार्य के लिए समूची शक्ति के साथ जुटने का आह्वान किया ।

आज का युगधर्म—शक्ति की उपासना

वर्तमान सरसंघचालक श्री बालासाहब देवरस के भाषणों में भी यह बात आती रहती है कि पहले हम समर्थ बनें, तत्त्वज्ञान के पीछे शक्ति खड़ी करें, तभी उस तत्त्वज्ञान को दुनिया स्वीकार करेगी । उसके अभाव में हमारे महान् ग्रंथ विद्वानों की खोज की विषय-वस्तु के रूप में अलमारियों की शोभा बढ़ाते रहेंगे । श्री देवरस जी ने उपर्युक्त बात कहते हुए संघ-संस्थापक डॉ० हेडगेवार की बात को ही दोहराया है जिन्होंने एक भाषण में कहा था—"अपना धर्म और अपनी संस्कृति कितनी ही श्रेष्ठ क्यों न हो, जब तक उनकी रक्षा करने की शक्ति हमारे पास नहीं होती तब तक दुनिया में कोई उनका आदर नहीं करेगा । सब कुछ होते हुए भी अंत में प्रश्न खड़ा होता है शक्ति का । शक्तिहीन होने के कारण ही अपना धर्म और समाज दीन-हीन अवस्था को प्राप्त हुआ

है।'' संघ इस शक्ति की अखण्ड साधना पाँच तपों * से भी अधिक समय से करता आ रहा है। अभी वह पूरी नहीं हुई। संघ के नेता देशभर की परिस्थिति का अध्ययन कर बता रहे हैं कि कार्य की गति तेज करने के लिए समय बहुत अनुकूल है। जितने अधिक लोग जितनी लगन से इस साधना में सहभागी बनेंगे, उतने ही शीघ्र हम अपने लक्ष्य की सिद्धि कर सकेंगे। कार्यकर्ता भी वैसा ही अनुभव कर रहे हैं।

* बारह वर्षों का एक तप

यह बात ध्यान देने योग्य है कि देश की परिस्थिति में बहुत तेजी से परिवर्तन आ रहा है। जब डाक्टर साहब ने संघ प्रारंभ किया था, तब बहुत थोड़े लोग ही संघ के विचार और उसकी कार्य-पद्धति से सहमत थे। लोगों को यह विश्वास भी नहीं होता था कि हिन्दुओं को संगठित किया जा सकता है। एक समय ऐसा था कि संघ की कल्पना समझाने वाला व्यक्ति लोगों को पागल लगता था। गत ६३ वर्षों में वातावरण पूरी तरह बदल गया है। हिन्दु विचारधारा के समर्थक अब देश में सब जगह खड़े दिखाई देते हैं। अपने राजनीतिक स्वार्थ के लिए संघ को साम्प्रदायिक कहकर लांछित करने वाले लोग भी जब अपने मन के वास्तविक भाव प्रकट करने का अवसर पाते हैं, तब वे कुछ और ही बोलते हैं। जैसे-जैसे हिन्दु मतदाता अधिक जाग्रत होकर हिन्दु के नाते निर्णय करने लगेगा, वैसे-वैसे इन राजनीतिक नेताओं की संघ और हिन्दु समाज की ओर देखने की दृष्टि में भी परिवर्तन आयेगा और वे उसकी निन्दा करने के स्थान पर उसकी कृपा के आकांक्षी बनेंगे।

भोगवाद नहीं, अध्यात्म

संघ के इस कठोर तप में कांग्रेसियों से भी अधिक बाधाएँ कम्युनिस्टों ने डाली हैं। उनके प्रचारतंत्र ने संघ पर विध्वंसक आक्रमण करने में कोई कसर नहीं छोड़ी। १९२५ के बाद का कालखण्ड कम्युनिस्टों के लिए संसारभर में काफी अनुकूल रहा। बुद्धिमान और सुशिक्षित तरुणों को कम्युनिस्ट क्रान्ति का प्रबल आकर्षण था। नेहरू स्वयं कम्युनिस्ट विचारधारा के प्रभाव में थे। किन्तु कम्युनिस्टों के वैचारिक और कभी-कभी होने वाले शारीरिक आक्रमणों को संघ ने पचा लिया। श्री गुरुजी ने कम्युनिस्टों की कथनी और करनी को इतने प्रभावी ढंग से जगजाहिर किया कि उनको अपना मुँह छिपाना भी कठिन हो गया। श्री गुरुजी के वक्तव्यों ने उनके समस्त वैचारिक अधिष्ठान को छिन्न-भिन्न कर दिया। संघ के राष्ट्रवाद को उखाड़ फैंकने और भारत को कम्युनिस्टों की छावनी में ढकेलने के उनके सपने अब टूट चुके हैं। यद्यपि कम्युनिस्ट अभी दाँवपेच चला रहे हैं, उनमें पहले जैसा जोश नहीं रहा। कम्युनिस्ट विचारधारा के गढ़ रूस और चीन में ही विचार और व्यवस्था के क्षेत्रों में जो भारी उथल-पुथल मची हुई है उससे तो कम्युनिज्म की जड़ें ही हिल गयी हैं। आज प्रान्तों में सत्ता के बल पर वे भले ही फुफकार रहे हों, किन्तु उन्हें देश का व्यापक जनसमर्थन मिलने की कोई संभावना दिखाई नहीं देती। समाजवादी लोग भी जनमानस पर अपनी पकड़ जमा नहीं पाये और अब अल्पसंख्यकों की वैसाखी पर लंगड़ी दौड़ दौड़ने का प्रयत्न करने में लगे हैं।

हिन्दुत्ववादी विचारधारा को कम्युनिस्ट अथवा समाजवादी विचारों की अपेक्षा भी अधिक बड़ा खतरा पश्चिमी समाजों की नकल करने वाले उन स्वाभिमानशून्य लोगों से है जो 'खाओ, पियो और मौज करो' के भोगवादी सिद्धान्त के पीछे चल रहे हैं। प्रायः सारी दुनिया ही आज भोगवाद की आंधी में फँसी हुई है। उसको पलटकर संघ विश्व में हिन्दु संस्कृति का प्रभाव फिर से स्थापित करना चाहता है। अनेक पश्चिमी विचारक भी अब यह मानने लगें हैं कि दुनिया के कल्याण के लिए भोगवादी जीवन-दृष्टि के स्थान पर आध्यात्मिक विचार जगाने की महती आवश्यकता है। संघ-कार्य की सफलता के लिए भी यह आवश्यक है। आध्यात्मिक जीवन-मूल्यों के बिना सांसारिक सुख-सुविधाओं को ठोकर मारकर निःस्वार्थ भाव से कार्य करने वाले कार्यकर्ताओं का विशाल वर्ग संगठन को प्राप्त ही नहीं हो सकता। उनके ही आधार पर तो भोगवाद को पराजित कर अध्यात्म की पताका फहराना संभव होगा। समय की माँग है कि मानव जाति के कल्याण के लिए, जीवन को नाश की ओर ले जाने वाले भोगवाद को हम उखाड़ फैंकें। संघ हिन्दु नवयुवकों में इसी आकांक्षा का निर्माण करने में लगा है कि अपने पुरुषार्थ से हिन्दु राष्ट्र को समर्थ बनायेंगे और उसके सहारे पहले भारत से और फिर सारे संसार से भोगवाद के झंडे उखाड़ फैंकेंगे।

हिन्दुत्व की लहर

हिन्दु-जागृति की लहर इन सारी विघ्न-बाधाओं को चीरकर आगे बढ़ रही है। देश का विचार मन में रखने वाला तरुण वर्ग बड़े पैमाने पर हिन्दु राष्ट्र के विचार की ओर आकृष्ट हो रहा है। अन्य सारी विचारधाराएँ निस्तेज होती जा रही हैं। १९२५ में डॉ० हेडगेवार अकेले खड़े हुए और यह कहते हुए जिद से काम में जुटे कि "भारत हिन्दु राष्ट्र है। इसे संगठित कर देश को परम वैभव के शिखर पर पहुँचाऊंगा।" उन्होंने अपनी काया १५ वर्षों तक इसी काम में तिल-मिल करके खपायी। उनकी तपस्या का ही यह परिणाम है कि परिस्थिति में आशाजनक परिवर्तन होता दिखाई दे रहा है। यह हमारा महद्भाग्य है कि डाक्टर साहब ने संघ जैसे संगठन का निर्माण किया।

उन्हीं संघ-निर्माता की जन्मशताब्दी हम लोग इस वर्ष मना रहे हैं। यह आयोजन तभी सफल समझा जायेगा जब केवल संघ के स्वयंसेवक ही नहीं अपितु समाज, जिसके उत्थान के लिए डाक्टर साहब का मन तड़पा करता था, कृतज्ञ भाव से उनका पुण्य-स्मरण करे। यही इस कार्यक्रम के पीछे उद्देश्य है। डाक्टर साहब को किसी महापुरुष की प्रतिमा देवघर में बैठाकर उसकी पत्र-पुष्प-धूप-दीप-नैवेद्य से कोरी पूजा करना मान्य नहीं था। वे राष्ट्रीय महापुरुषों के बारे में 'नमस्कारवाद' बिल्कुल पसंद नहीं करते थे। लोकमान्य तिलक की चतुर्भुज मूर्ति बनाकर पूजा करने की पद्धति को वे सर्वथा घातक बताते थे। उन्हें राम और कृष्ण के केवल भजन गाना और पुण्य-संचय के लिए रामायण का पाठ करना बिल्कुल रुचता नहीं था। उनका कहना था कि इन सब महापुरुषों की अनमोल गुणसंपदा की ओर देखा जाय, उनके उपदेशों की ओर ध्यान दिया जाय और भक्तगण तदनुसार ही अपना जीवन गढ़ने के लिए आगे बढ़ें। स्वयं को

डाक्टर साहब का अनुयायी मानने वालों को चाहिए कि महापुरुषों की ओर देखने की इस विशेष दृष्टि को अपने जीवन में अपनायें ।

पूर्ण करेंगे केशव यह साधना तुम्हारी

डाक्टर साहब का जीवन अत्यन्त उद्यमशील, कर्तृत्वशील और पूरी तरह राष्ट्र-समर्पित था । उन्होंने संघ-कार्य में व्यक्तिनिष्ठा को महत्त्व न देते हुए तत्त्वनिष्ठा को महत्त्व दिया । इसी कारण, व्यक्ति काल के गाल में भले ही समाते गये हों, कार्य की गति खंडित नहीं हुई । उन्होंने प्रारंभ से ही संघ में किसी व्यक्ति का जय-जयकार करने की प्रथा नहीं पड़ने दी । ऐसी स्थिति में उनकी जन्मशताब्दि केवल उनका जय-जयकार कर अथवा उनके स्मृति-मन्दिर खड़े कर कैसेमनायी जा सकती है ? डाक्टर साहब का पुण्य-स्मरण सही अर्थों में करना हो तो उनकी प्रेरणा, उनके विचारों की उड़ान, उनके मन की तड़प, उनकी संगठन-कुशलता तथा बिना विश्राम लिये परिश्रम करने की उनकी तैयारी आदि गुणों का आदर्श आँखों के सामने रखना आवश्यक होगा और निष्क्रियता व उदासीनता को त्यागना होगा । उनकी कल्पना का अजेय हिन्दु राष्ट्र खड़ा करने के लिए दिन-रात एक करना होगा, हिन्दु-जागृति के परम आवश्यक कार्य को चारों ओर से बढ़ाना होगा । राष्ट्र और मानवता के कल्याण के लिए आवश्यक हिन्दु-शक्ति खड़ी करने के लिए तन-मन-धनपूर्वक कार्य करना हमारा कर्तव्य है । सौभाग्य से आज ऐसे लोगों की संख्या लाखों में है जो हिन्दु संगठन को आवश्यक, अनिवार्य और व्यवहार्य मानते हैं । विस्तृत राजमार्ग सामने है । सब मिलकर प्रयत्न करें । अपेक्षा से भी पहले चित्र बदला जा सकता है ।

संघ के स्वयंसेवकों के कानों में डाक्टर साहब द्वारा लगभग ५० वर्ष पूर्व कहे गये ये शब्द गूँज रहे होंगे :

"हमें यह सिद्ध कर दिखाना है कि जनता के संगठन से देश की विराट् शक्ति का निर्माण हो सकता है । इस कार्य के लिए हममें से प्रत्येक के हृदय में तीव्र व्याकुलता उत्पन्न होनी चाहिए । अन्य किसी भी बात में हमारी रुचि न हो । जिसने देश और समाज की सेवा करने का महान् व्रत ग्रहण किया है, ऐसे स्वयंसेवक को अब सुख और आराम कहाँ ? कार्य ही उसका सब कुछ है । सारी शक्ति दाँव पर लगाकर उसे कार्य में जुट जाना चाहिए । हममें अपने उद्देश्य को अपनी आँखों से पूरा होते देखने की प्रबल लालसा होनी चाहिए । मुझे पूरा विश्वास है कि संघ का प्रत्येक स्वयंसेवक अपना कर्तव्य पूरा करेगा ।

".....भारत की भाग्य-लक्ष्मी को आपके सिवाय भला और कौन प्रसन्न कर सकता है ? और कौन है जो सर्वस्व का त्याग करते हुए सतत् पुरुषार्थ कर सके ? यह तो आपको और केवल आपको ही करना है ।"

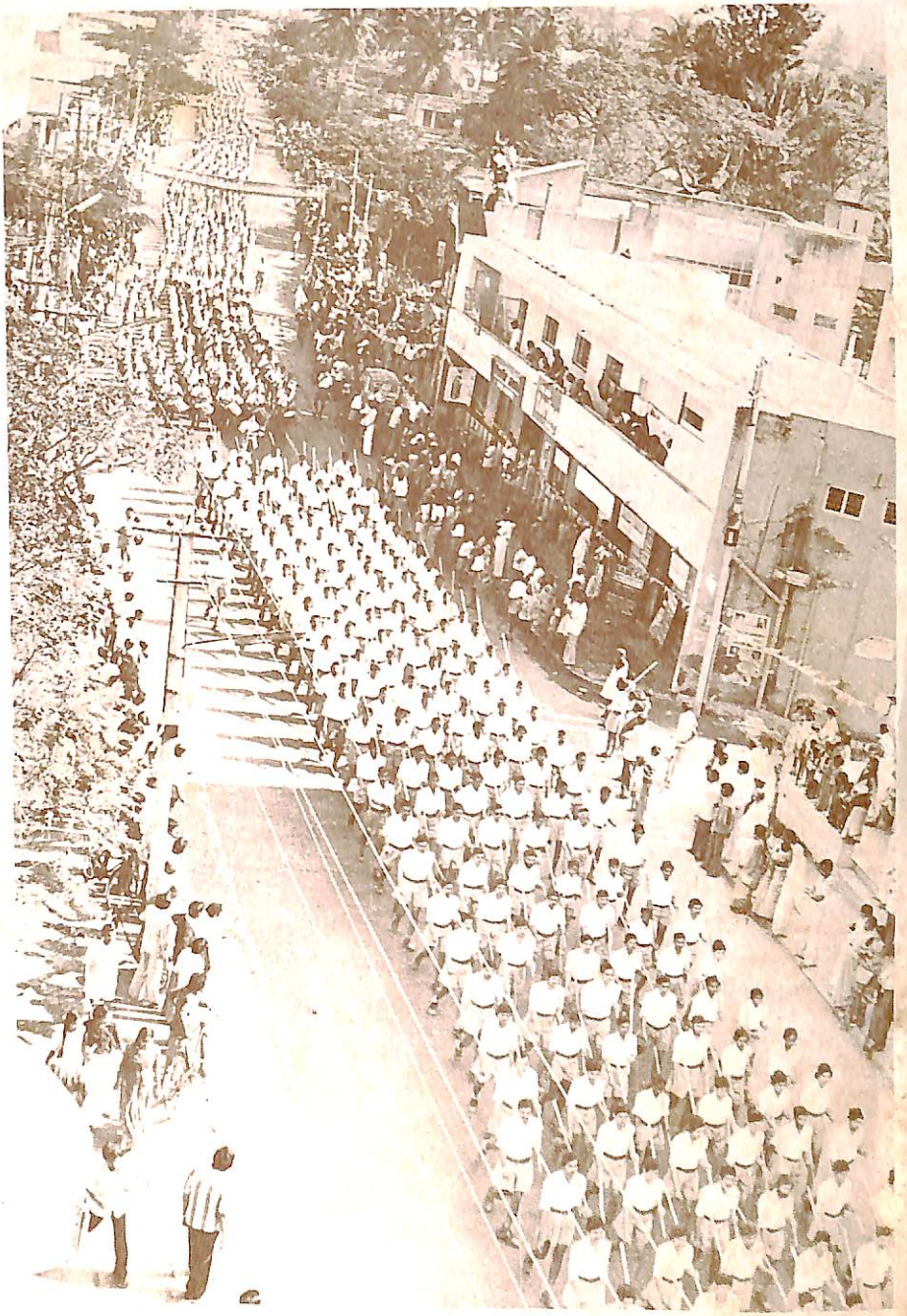

र्मृति - मंदिर, नागपुर